उपन्यास-ग्रंथमाला

पुस्तक संख्या २

दि॰ २४/५/११

ज़हर का प्याला

उपन्यास बहार आफ़िस
राजघाट-काशी ।

ज़हर का प्याला वा राजराजेश्वरी।

(एक अनूठा सामाजिक उपन्यास)

नवाबीपरिस्तान, काश्मीरपतन, शूरशिरोमणि रौशनआरा, मल्का-चांदबीबी, रंग में भङ्ग, वीरवराङ्गना, देवी या दानवी, प्रभातकुमारी, फूलकुमारी, भयानकभेदिया, रानीपन्ना, कालाचांद, किशोरी, कलावती, चम्पा, मायारानी, भूतोंकाडेरा, लंगड़ाखूनी, चन्द्र-शाला, चंद्रलोक की यात्रा, बिनासवार का घोड़ा, दो खून, इत्यादि उपन्यासों के रचयिता—

काशी राजघाट निवासी

बाबू जयरामदास ने उपन्यास प्रेमी पाठकों के लिये रचकर प्रकाशित किया।

बी. एल. पावगी द्वारा

हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित।

प्रथम बार ११००)   जनवरी सन १९११ ई०   (मूल्य ।॥)

मेरी दो दो बातें।

प्रिय पाठक ! जिस कहानी को आज मैं सुनाने चला हूं ! यह बिल्कुल अक्षरशः सत्य है। यह संसार विचित्र है। नित्य निराली बातें हुआ करती हैं,—जिनके सामने मेरी कहानी कुछ भी हकीकत नहीं रखती है। दुनियां में मुझसे भी बुरे लोग हो गये हैं,—अभी वर्तमान हैं और आग होवेंगे भी। खोजने से उन लोगों में अधिक भाग ऐसा ही मिलेगा जो अनजानी के कारण इस दलदल में फंसा हो। इसका कारण क्या है ? केवल माता पिता का बालक के ऊपर "अपत्यस्नेह" (२) उनकी सुशिक्षा और उनके साथियों की तरफ कम ख्याल और (३) यह कि, भाषा में ऐसी कोई पुस्तक का न होना जिसको पढ़ वे अपने चरित्र के भविष्य के बारे में कुछ विचार कर सकें और भले बुरे कर्मों का परिणाम सोंच सकें। इसी विचार और ख्याल के कारण बाबू जयरामदास को कष्ट दे मैंने प्रतिध्वनिकी आज्ञानुसार अपना चरित्र लिखवाया है। इससे यदि पाठकों, उनके मित्रों तथा मिलनेवालों को कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा और अपने को धन्य मानूंगा। विनीत,—मैं।

निवेदन।

यह कहानी किसी व्यक्ति विशेष, समाज अथवा देश के ऊपर आक्षेप की दृष्टि से नहीं लिखी गयी है। वरन यह एक मनुष्य के ऊपर बीती हुई बातों का सच्चा फोटो है और पात्रों का असली नाम बदलकर यह इस ख्याल से लिखी गयी है कि नव्य-समाज इससे शिक्षा ग्रहण कर लाभ उठावे और दिन दिन गिरते हुए भारतवर्ष मे कुचालों को दूरकर ऋषि मुनि के संतान होने की गौरव को प्राप्त करे। विनीत—लेखक।

॥ श्रीः ॥

ज़हर का प्याला

वा

राजराजेश्वरी

(सामाजिक उपन्यास)

पहिला रंग

हा प्यारी राजराजेश्वरी ! तुमने मुझको बड़ा धोका दिया, मुझसे भारी कपट किया, छल से दिन दहेड़े लूट लिया । हे सफेद नागिन ! हे मीठी ज़हर ! जिस प्रकार तू ऊपर से सुघड़, सुंदर और लावण्यमयी है, उसी प्रकार तेरे भीतर हलाहल भरा हुआ है। ओफ ! निसन्देह ! तू पूरी कालीनागिन है, ज़हर की बुताई हुई चमचमाती छुरी है, इन्द्रारुन की फल है । हाय ! मेरा वह ज़माना जब आंखों के सामने आता है, तो मेरी छाती फट जाती है, कलेजा हिल जाता है, दिल टुकड़े टुकड़े होजाता है, आंखों के नीचे अँधेरा छा जाता है, पैरों तले की ज़मीन निकल जाती है,–सारी दुनियां स्याह नजर आती है । हे दुष्टा ! एक वह जमाना था जब कि मैं अपने बाप मां, बड़े बूढ़े, भाई बंधु की सिखावनों और उनकी नसीहतों की कुछ भी परवाह न करके, तेरे लिये पागल हो रहा था, ज़मीन की गर्द उड़ा रहा था, दरबदर फिर रहा था । और देख ! एक यह जमाना है कि मुझको दूसरों का आश्रित होना पड़ता है, दूसरों की कृपाओं से पेट पालना पड़ता है,–दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है । आह ! मैंने तुझे वेश्या नहीं समझा था, बल्कि तुझे अपना प्राण-प्यारी जानता था । हाय, नहीं तो कभी भी तेरे

दाम-फरेब में न फंसता, तेरी झूठी मुहब्बतों में मतवाला न होता,—बाप मां की अपार सम्पत्ति को पानी की तरह न बहाता ! हाय ! !

अफसोस ! सद अफसोस ! मैंने बड़ा भारी धोखा खाया, जान बूझकर अपने लिये कालानाग पाला । हाय ! मेरा उस समय का ठाठबाट अब कहां है ? हाथों की वह रुपौली छड़ी, आंखों का सोनेवाला वह चश्मा, पैर का वह रंग बिरंगी जूता, और बदन का दम दम पर बदलनेवाला ठाठदार रोबीला कपड़ा इस समय कहां है? हाय ! वह मेरे साथ के ऐय्यार लोग, जिन्होंने मुझे अमृत कहकर ज़हर पिलाया अब क्यों नहीं सामने आते और मेरी खुशामद करते हैं, अब वे लोग भी नहीं दिखलाई पड़ते हैं जो हरवक्त बाबू साहब, बाबू साहब कहते हुए साथ लगे रहते थे ।

आह ! पहिले और अब में कितना फर्क पड़ गया है । मैं आदमी से हैवान होगया हूं । आह ! सोने के घड़े के भीतर की ज़हर ! तू ने भी उसी समय तक मेरे ऊपर अपनी बनावटी चाह दिखलाई, जब तक कि मेरे पास माल था, ज़र था, दौलत थी और जब तक मैं तेरी फरमाइशों को अपनी पलकों से बजा लाता था। आह ! जिस तरह तेरे नाम से अमृत टपका पड़ता है, उसी प्रकार तेरे भीतर विषरूपी नाग डसने के लिये ललचा पड़ता है ! आह ! तेरी बनावटी चाह, नकली प्रेम, झूठी मुहब्बत में कितना विषैला रस भरा हुआ है, जिसने कितनों का खूनकर डाला, कितनों को जीते दरग़ोर कर दिया और कितनों को नर्ककुंड के रौ रौ नर्क में पहुंचा दिया । ओफ ! जिस समय मुझे तेरे कोठे पर की बातें याद आती हैं, तेरी फरमाइशों का ख्याल होता है, तेरे उन लम्पट साथियों के भुलावे याद आते हैं तो ऐसा जी चाहता है कि अभी अभी चलकर तेरी नाक काट तुझे कुरूपा बनादें । हे दुष्टा ! अब मुझे मालूम हुआ है कि तू ने मुझको ही नहीं फांसा है किन्तु, अपने सुन्दर

ज़हर के प्याले को पिलाकर कितनों को मारडाला, कितनों को जहन्नुम भिजवा दिया, कितनों को कैदखाने में डलवादिया और कितने को गली गली का टुकड़खोर बना दिया । पापिनी ! ज़हर की प्याला ! क्या विधाता ने तुझे इसी लिये स्वरूपा बनाया है ।

पूर्व कथित बातें स्वप्न में देखने से एकाएक मेरा दिल हिलकर भयग्रस्त हो गया, जिसके साथ ही मेरी आंखें भी खुल गई और मैं सड़क के बगल के एक चबूतरे पर, जिसपर कि सोया हुआ था उठकर बैठ गया ।

जागतेही मालूम हुआ कि मेरा दिल हौल हो रहा है, कलेजा धकधक कर रहा है सांसें बड़ी तेजी के साथ चल रही हैं । मैं घबड़ाकर बगल की सड़क पर टहलने लगा । लगभग पन्द्रह मिनट तक सड़क पर टहलने तथा ठंडी हवा के लगने से चित्त को ऊपर से शांति मिली पर दिल को चैन न आया । एकाएक ख्यालों के झोंकों ने उठकर अशांति की आगको और भी भड़का दिया । साथही मैं सोंचने लगा कि आज क्यों ऐसा हुआ ? आज क्यों ऐसा दहला देनेवाला स्वप्न दिखलाई पड़ा ? क्या आज शरीर में हद से ज्यादे मनोबेदना हुई ।

इस विषय पर बड़ी देर तक मैं तर्क वितर्क करता रहा, पर कुछ भी समझ में न आया । एकबार सोंचा, क्या बदला लेनेसे दिल को शांति मिलेगी ? पर इसके साथ ही दूसरी तरफ से प्रतिध्वनित हुआ " नहीं, प्रायश्चित करने से ! दयानिधी के ऊपर छोड़ देने से, दूसरों को अपना चरित सुनाकर सुमार्गी बनाने से ।" यह प्रतिध्वनि सुनकर मैं बड़ा विस्मित हुआ । चारों तरफ देखा, न आदमी और न आदमीजात , साफ सड़क, निर्मल चन्द्रदेव का प्रकाश, स्वच्छ आस्मान और ठंडी ठंडी मंद मुस्कान लेने वाली हवा ।

चारों तरफ किसी को न पाकर मैंने अपने दिल में कहा,

आज क्या मामला है । कैसी कैसी अजीब बातें आंखों के सामने आ रही हैं । इधर उधर की बहुत सी बातों के सोंचने पर एकाएक चन्द्रदेव की प्रकाशमयी किरणों की तरह मेरे हृदय में भी प्रकाश ने पहुंचकर अंधकार को दूरकर दिया और मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई कानों में कह रहा है ' ओह ! तुमने इतना दुःख उठाया पर तुझे अभी तक ज़रा भी ज्ञान न हुआ । सुन, जब आदमी का शुद्धांतःकरण साफ हो जाता है, जब उसके हृदय की मैल निकल जाती है और वह भगवत भजन में लवलीन हो जाता है तो वह मैल जो उसके हृदय के ऊपर जमी रहती है दूरहो जाती है और उसे स्वयमही अपना कुकर्म आपही आप समझ पड़ने लगता है ।

ऐसा सुनकर मैंने अपने दिल में कहा " अब बहुत कुछ हो चुका । मैंने अपने जीवन में बहुत पाप कमाया, अब चलकर प्रतिध्वनि के अनुसार किसी लेखक से अपना जीवन चरित्र लिखवाकर प्रकाश कर देना चाहिये जिसमें कि दूसरे विचारे भोले भाले लोग मेरी कहानी पढ़कर " ज़हर के प्याले " से बचें और किसी खुशामदी, चापलूस तथा मीठी बोल बोलनेवाली रंडियों के फंदे से बचने के साथ ही बहुत कुछ लाभ भी उठावें । अस्तु,

मैं भी उसी समय एक योग्य लेखक की फिराक में फिरने लगा

दूसरा रंग

कहानी सुनाने के पहिले अपना तथा अपने वंश इत्यादि का परिचय दे देना आवश्यकीय है। परन्तु पाठक ! मैं कुकर्मी हूं, घोर पापका कमाना तथा बाप दादा के नाम में कलंक लगाना मेरा व्यवसाय होगया था और यहां तक कि आखिर में मेरी ऐसी दशा होगई. जैसा कि आप लोगोंको विदित होचुका है । अतएव मैं अपने पिता का नाम तथा वंशपरम्परा इत्यादि का परिचय न देकर

केवल इतनाही कह कर आपलोगों से क्षमा चाहता हूँ कि, मेरा घराना एक प्रतिष्ठित था और मेरे पिता एम. ए. पास थे। उन्होंने कहीं नौकरी न कर केवल व्यवसाय के जोर से कई लाख पैदा कर "व्यापारे वसते लक्ष्मीः" को सिद्ध कर दिया। हाय! अब मुझे सुझाई पड़ता है, अब मुझे में समझने की अक्ल हुई और, अब मेरी आंखें खुली हैं कि "मैं अपने घराने में दीपक से काजल प्रगट" वाली कहावत को चरितार्थ करनेवाला पैदा हुआ।

मैं अपने पिता का एकलौता लड़का था। अपलोग जानते हैं कि भारतवर्ष में लड़कों का लाड़ प्यार हद दर्जे का किया जाता है। जिससे वे बिगड़ जाते हैं और उनका मिजाज बौख जाता है। जब कभी पिताने कुछ डांट चढ़ाई, तभी बालक की माता सामने आ खड़ी हुई। जिससे बालकों का मिजाज और भी बढ़ जाता है, और आखिर में अगर वे न सम्हले, ईश्वर ने उन्हें सुमति न दी और अच्छे का साथ न होकर कुसंगति हुई तो उसकी ऐसीही दशा हो जाती है जैसा कि मेरी।

आप लोग देख ही रहे हैं और देखते आ रहे हैं कि भारत क्यों निर्धन हुआ जारहा है क्यों पापकर्म दिन दिन बढ़ रहे हैं और क्यों वेश्यायों के पास इतनी सम्पति दिखलाई पड़ती है? इन सबका कारण यही है कि धनी लोगों के बालकों को बचपन से चांप नहीं चढ़ाई जाती, उन्हें अपराधों के लिये आदर्श दंड नहीं दिया जाता बल्कि क्षमा कर लोग उनके लिये पाप तथा दूसरे बुरे कर्मोंके मार्ग को और भी चौड़ा कर देते हैं। वही बालक, जब यौबनवस्था को प्राप्त हुए,—जब अपने पिता की गद्दी पर बैठकर उन्हों ने पिता की उपार्जित अपार सम्पाति को देखा तो उनका दिमाग जो एक प्रकार पहिलेही से खराब हुआ रहता है खौल जाता है और वे वानिज्य तथा व्यवसाय को छोड़कर कुकर्मों में धनका व्यय कर

ने लगजाते हैं। जिनसे रंडिया तथा दूसरे कुपेशे लोग मालोमाल होजाते हैं। इस कुव्यसन से कुछ दिनों के बाद कोठीका दिवाला निकल जाता है और बाबू साहब गली गली टुकड़ा मांगते फिरते दिखलाई पड़ते हैं जैसा कि मैं हूं।

प्रिय पाठकगण! यही दशा हमारी भी हुई यानी सोलहवर्ष की अवस्था तक पिता के लाख लाख चेष्टा करने पर भी मैं लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर ही रहा। आखिर में लाचार होकर उन्हों ने पढ़ने के लिये विवशकरना छोड़कर मुझे अपने साथ व्यवसाय में लगालिया! मैं भला व्यवसाय क्या करता? जबतक पिता जी दुकान पर रहते मैं भी इधर उधर सट्ट फट्ट किया करता जहां उनकी नजरों से बचता झट किसी बहाने से निकल खड़ाहोता और अपने साथियों से मिल हा हा हू हू करने लग जाता।

एक दिन संध्या के समय मैं अपनी दुकान से उठा और सैर करने की इच्छा से धीरे धीरे सड़क पर चला जा रहा था। इस समय हवा ठंडी ठंडी बह रही थी बादल आस्मान को धीरे धीरे काला कर रहे थे। उनकी विचित्र शक्ल बड़ी डरावनी दिखलाई पड़ती थी। जिनके गड़गड़ाहट की आवाजों से आस्मान दहल उठता था। और हवा की ठंडक से यह भी जान पड़ता था कि मानो कहीं पानी बरस रहा या बरस चुका है।

हाथ में चांदी की मुठियेदार मोटी छड़ी लिये, आँख में सुनैना चश्मा लगाये, खूब साफ कपड़ा पहने ऐसे ही समय में मैं कम्पनी बाग की तरफ चला जा रहा था कि एकाएक रास्ते ही में मेरे पुराने मित्र श्यामलाल जी जिनको हमारा साथ छोड़ बाहर गये लगभग तीन बरस के होगया था, मिल गये।

मुझे देखते ही उन्होंने पास आ बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया फिर इधर उधर की बहुत सी बातों के होने के पश्चात् मैंने पूछाः—

"बहुत दिनों के बाद आप के दर्शन हुए हैं, कहिये अब कहां हैं ?"

श्याम०। क्या आपको नहीं मालूम है कि अब मेरी बदली यहीं हो गई है।

मैंने कहाः-"तब तो बड़ी खुशी की बात है। कहिये अब कहां चलने की तैयारी है।

श्याम०। भाई, एक दोस्त से मिलने जा रहा हूं।

मैं,-कौनसा दोस्त यार ?

इसपर उन्होंने कुछ भी उत्तर न देकर हँस दिया।

मैं,-कहिये साहब, आप हँस क्यों पड़े ?

श्याम०। हँसेने का कारण है। यदि आप भी चलना चाहें तो चल सकते हैं।

मैं उनके हँसने का मतलब तो समझ सका नहीं। पर तुरत उनके कहने के अनुसार चलने पर राजी हो गया। टहलते टहलते वे दालमंडी में पहुंचे। वहां पहुंच कर वे एक तमोली के दुकान पर खड़े होगये। तमोली ने उन्हें पान दिया, पान खा कर ज्योंहीं उन्होंने सामने की तरफ नजर उठाई, त्योंहीं सामने की बैठी हुई वेश्या हँस पड़ी। मेरे साथ रहने से वे कुछ भी न बोल सके वरन् उन्होंने बहाली दे दिया।

इसके बाद ज्योंहीं वह मेरे साथ आगे बढ़े त्योंहीं एक लड़के ने आकर सलाम किया।

उसको देखते ही बाबू श्यामलाल हँस पड़े और बोलेः— "कह रे क्या है ?"

लड़०। चलिये आप को बुलाती हैं।

मेरे साथ रहने से पहिले तो वे शरमा गये परंतु फिर विवश होकर उन्हें लजा की तिलांजली देनी पड़ी। उन्होंने कहाः— "अच्छा कह दे, उधर से लौटकर आते हैं ?"

इसके साथ ही वे मेरा हाथ पकड़े हुए आगे बढ़े और मैंने पूछाः–" वह लौंडा किसका नौकर था ?"

पहिले तो वे जवाब देने से रुके परंतु फिर जब मैंने उनसे आग्रह किया तो वे कहने लगेः–"जहां हम लोगों ने पान खाया है, उसी के सामने वाली रंडी, जिसका नाम भगवती है। वह उसी का नौकर था।"

मैंने पूछाः–" आपकी उसकी कबकी जान पहचान है ?"

उन्होंने कहाः–" लगभग एक बरस के हुआ कि मेरे एक मित्र ने उसे रक्खा था। उन्हीं के साथ मैं भी कभी कभी जाया आया करता था। तभी से इसकी और मेरी जान पहिचान है।"

मैं,–फिर यह यहां कैसे आगई ?

श्याम०। जब वे मर गये तो वह फिर अपने बहिन के यहां चली आई।

इसके बाद मैंने कुछ न पूछा। बरन् इधर उधर टहलकर एक घंटे के बाद फिर उधरही से लौटा। देखा तो वही यमदूत फिर सामने खड़ा है। ज्योंहीं वे उसके सामने पहुंचे हैं त्योंहीं लड़केने कहाः—" नहीं चलिये, वे हमारे ऊपर बिगड़ने लगीं कि लिवा क्यों नहीं आया।"

यह सुनकर उन्होंने कोठे की तरफ आंखें उठाकर देखा। कौतुकवश मैं भी उसी तरफ ताकने लगा। देखा, उसने नाक सिकोड़ और भौं तानकर ऐसा नैन सर मारा कि बाबू श्यामलाल आपेसे बाहर होगये,–अपने को सम्हाल न सके और मुझसे बोलेः–" अगर आप कहें तो खड़े खड़े सुनते आवें।"

मैं, यद्यपि लड़कपन से खेल कूद ही में तमाम दिन बिता डालता था पर आज तक कभी भी मुझे ऐसे नैनसर का सामना न करना पड़ा था। सच पूछो तो उस सर ने मेरे दिलपर भी इतना

असर किया कि मैं भी इसके सिवाय कि " अच्छा, जाइये, सुन आइये " और कुछ भी न कह सका।

कहीं फांस से भी चीड़िया निकल सकती है ? वही दशा मेरे परम मित्र बाबू साहब की हुई। चलने को तों वे चले गये, पर फंदे से निकल न सके। लगभग पन्द्रह मिनट तक मैं वहीं बाजार में खड़ा रहा। एक तो तबीयत चाही कि चल चलैं। पर फिर सोंचा कि वे मेरी निन्दा करैंगे। इतने में उसी लौंडे ने आकर कहा, " चलिये आपको बुलाया है।"

मैं,—कौन ?

वह०। वही आपके साथ वाले बाबू साहब।

यह सुनकर मैं पशोपेश में पड़ गया। विचारने लगा कि क्या करना चाहिए। फिर कुछ सोंच समझकर आगे बढ़ा, पर पैर थरथराने लगा, मानों कोई पैर पकड़कर पीछे को खींच रहा है। बड़ी मुश्किलों से चित्त की घबराहट को रोक और दिल सम्हालकर सिढ़ियों द्वारा ऊपर पहुंचा। देखा, भगवती सामने बैठी हुई है और श्यामलाल बाबू से मुस्कुरा मुस्कुराकर बातें कर रही है। मुझे देखते ही उसने उठकर सलाम किया और उन्होंने मुझे अपने बगल में स्थान दिया। फिर निम्न लिखित बातें होने लगी।

भगवती ने मुझसे पूछाः—"कहिये जनाब ! आपका क्या नाम है ?"

उसके इस सवाल के साथ ही शर्मने आ दबाया, मारे लज्जा के मुझसे बोला नहीं गया और मैं कुछ भी जवाब न दे सका।"

लाचार हो श्यामलाल ने कहाः—" आप मेरे मित्र हैं और यहीं के रहने वाले हैं।"

भग०। अभी आपके मुँह गुड़ लगा नहीं मालूम होता है।

इसपर श्यामलाल नें हंस दिया। और मैं इसका कुछ भी अर्थ न समझ सका।

इसके बाद दो सफरदा आये और सलाम कर करके अदब से वे बैठ गये।

उन दोनों के बैठ जाने पर भगवती ने एक से कहाः–"क्यों टनमन, तुम इनको पहिचानते हो न?

उसने यानी टनमन ने उत्तर दियाः–"क्यों नहीं हजूर! क्या कोई अपने अन्नदाता को भी भूल जाता है। बाबू साहब की बदौलत तो हम लोग बहुत कुछ पा चुके हैं।"

दूसरे ने कहाः–"आज तो बाबू साहब बहुत दिन पर आये हैं। फिर तो जरूर ही नाच होगा।"

टन०। अगर शायद मेरी बदकिस्मती से नाच न हुआ तो मुजरा तो जरूर ही होगा।

भग०। छिः आज इतने दिन पर आये भी हैं, तिस पर तुम ऐसी बातें कहते हो।

इन बातों के गूढ़ अभिप्राय को मैंने जरा भी न समझा। इतने में ही See the cleverness of Dancing Owmen's man. सुनाई पड़ा। मैं लज्जा से सिर झुकाये नीचे की तरफ देख रहा था। सिर उठाकर देखा तो बाबू श्यामलाल को ऊपरोक्त बातें कहते पाया। पर फिर भी उनसे और कुछ न पूछा। वरन चुपचाप होकर मैं फिर नीचे की तरफ देखने लगा।

एक ने कहाः–"उस्तादजी को बुला लाऊं।"

भगवती इसका कुछ उत्तर देनेही वाली थी कि श्यामलाल ने मेरी तरफ इशारा कर और भगवती की आंखों से अपनी आंखों को मिलाकर कुछ इशारों में कहा। स्टेज के ऊपर इशारेका परदा गिरते ही भगवती एक पल के लिये कुछ उदास सी दिखलाई पड़ी। पर तुरंत ही उसने अपने उस भाव को छिपा कर कहाः–"खैर पान वगैरह तो मंगाइये।"

यह सुनते ही मेरे साथ के बाबू साहब ने एक रुपया निकालकर फेंका। साथही वहां का एक खिदमतगार उठा और पान लाने के लिये धम् धम् नीचे उतर गया।

इधर मेरे साथी साहब और बाई जी में घुल घुल कर बातें होने लगीं। लगभग पन्द्रह मिनट के बाद खिदमतगार एक दोने में खिल्ली का पान, दो गौरैया वगैरह लेकर आया और सामने रखगया। मैंने पान की तरफ एक बार नजर उठाकर देखा। मालूम हुआ शायद उसमें (दोने में) दो आने से ज्यादे के बीड़े न रहे होंगे। पर मैं क्या करता ? सोंचने लगा, दिया गया रुपया और पान आया दो आने का। लाचार कुछ न बोल चुपचाप बैठा रहा। उधर बाईजी ने पान के दोने को अपनी तरफ खींचालिया। साथही श्यामलाल से कहाः-" हां, पान का एक अंग्रेजी मसाला* चला है जिसे पान में खाने से बड़ा आनन्द मिलता है। कहिये तो मंगालूं।"

यह सुनते ही मेरे साथी साहब ने तुरंत एक रुपया और फेंका। उसने उसको उठाकर कहाः-"मुनुआ ! यह रुपया (देकर) ले और मेरे सिरहाने एक रुपया और रखा हुआ है, उसे भी लेता जा। अगर एक रुपये का मिले तो इसी का ले लेना। नहीं तो फिर दोनों रुपये का लेते आना।"

मुनुवा तुरन्त रुपया लेकर गया और एकही मिनट के बाद आ बोला कि,-एक रुपये का नहीं मिला है तो दोनों का लेलिया है।

" अच्छा किया। " कह कर भगवतीने हाथ बढ़ाया। उसने भी एक पुड़िया बाईजी के हाथ में रख दिया। भगवती ने उसे खोल-कर जरा जरा पानों में रख पहिले श्यामलाल, फिर मुझे दिया। उसके खातेही मेरी जीभ ठंडी होगई। ऐसा जान पड़ने लगा मानों

* पीछे मालूम हुआ कि यह कोकीन थी। जो उनदिनों में जगह जगह पैसे दो दो पैसे को बिकती थी।

मुंह में जीव्हा है ही नहीं। साथ ही मैं सोंचो विचार में पड़ गया। सोंचने लगा कि क्या वेश्या ने मुझे कोई वशीकरण औषधि तो नहीं खिला दी। पर श्यामलाल से पूछता कैसे? सामने वाराङ्गना बैठी हुई थी। दूसरे शर्म मुझे जीभ हिलाने तक की आज्ञा न देती थी।

इतनही में खिड़की पर बैठी हुई नाईका ने नीचे की तरफ देखा। साथ ही मालूम हुआ जैसे दो आदमी सिढ़ियों से ऊपर आ रहे है।

इसके बाद ही नाईका ने भगवती से पान मांगा। पान लेते समय उसने न मालूम क्या इशारा कर दिया कि वह उस तरफ से मुड़ने के साथ ही श्यामलाल से बोलीः—"इतने दिनपर आये तो भी मुजरा नहीं।"

इसका उत्तर देते ही श्यामलाल खड़े होगये और बोलेः— "दूसरे दिन आवेंगे तब जैसा कहोगी वैसा होगा" उनको खड़ा देखकर मैं भी उठ खड़ा हुआ। बाई जी बड़े नाजो अदासे वारी वारी से सलाम किया और ज्योंहीं मैं सीढ़ी पर पहुंचा हूं त्योंही सुनाई पड़ाः—"बुला लो।"

तीसरा रंग

जिस प्रकार ऊपर चढ़ते समय पैर थरथराने लगा था। उसी प्रकार इस भय से, इस समय भी कि कहीं कोई देख न ले, कलेजा बित्तों उछलने लगा। सीढ़ी को झटपट पारकार मैं सड़कपर आ गया। नीचे आ जानेपर दिल की धड़कन जब कम हुई तो मैं भगवती की एक एक बातोंपर विचार करने लगा। सच पूछो तो उसकी सूरत मुझे मनभावनी मालूम हुई। रास्तेभर मैं थोड़ी थोड़ी देर के लिये श्यामलाल से बातों में लग जाता। पर उसके पालिसदार चेहरे, खूबसूरत नाक, कटीली और बड़ी बड़ी आंखों, कालीनागिन

से लिपेटे हुए बाल और कपड़ों की सफाई व फ़रफ़राइट की तरफ़ रह रह कर दिल लोट पोट हो जाता था।

इसी प्रकार सोंचते विचारते मैं श्यामलाल के साथ चौक तक आया। फिर बंदगी करके घर की तरफ पलटा। पर इस समय रात के दस बज गये थे। चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। देर हो जाने के कारण पिता के बिगड़ने का भय लगा हुआ था। पर जिस समय मैं घर पहुँचा, सुसंयोग से पिताजी उस समय कहीं गये हुए थे। चटपट मैं भीतर गया और जल्दी जल्दी खाना खा कर नीचे आया कि पिताजी भी आपहुँचे। पर वे कुछ भी न पूछ सके। कारण कि उनको मेरे इतनी देर से लौटने का हाल अविदित था।

चौथा रंग।

जिस समय मैं बिस्तरे पर पड़ा। उस समय भी मेरे सिर में यही बिचार चक्कर मार रहा था। सबेरे जब मैं उठा तो उस समय भी भगवती की नाजोअदा की बातें एक एक करके सामने आने लगीं। इस समय दिल में दो प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे थे। एक तो कहता इन बातों का ख्याल मत करो, पर दूसरा कहता इस नश्वर संसार के ये भी एक फूल हैं। आदमी को हर एक चीज़ का थोड़ा थोड़ा आनन्द ले लेना चाहिये। निदान इसी तर्क वितर्क में कई दिन बीत गये। आखिर में दूसरे ही विचार ने विजय पाई। मेरे दिल में ठन गया कि इधर के भी कुछ आनन्द ले लेने चाहियें।

अतएव एक दिन मैं अपने उन मित्रों से मिला जिनको इन बातों में पूरी वाक़फियत थी और जो इसके लिये बदनाम भी हो चुके थे। और जब उनसे मैंने अपनी इच्छा कह सुनाई तो वे सब भी चटपट

राज़ी हो गये और कहने लगे कि हां उस तरफ से भी जानकारी हो जाना चाहिये। बस फिर क्या था? यह तो मेरे मनही की बात हुई, जो मैं चाहता था वही हुआ।

संझा होतेही मैं अपने दो मित्रों के साथ बाजार के लिए चल पड़ा। बाजार में पहुँचकर पहिले तो इधर उधर तीन चार कावा बदला। पर आखिरी बार अपने एक दोस्त की सम्मति से तीनों आदमी एक मकान में घुस गये।

यद्यपि आज भी दिल में कुछ खटका था परंतु पहिले दिन की तरह आज पैर न कांपा, कलेजा बित्तों न उछला। उस दिन तो बोलने में शर्म मालूम होती थी पर आज वराङ्गना के पूछने पर सहमते सहमते कुछ उत्तर भी दिया। थोड़ी देर तक हंसी मजाक होता रहा फिर पान पत्ते की खवाई हुई। बाद को बाई जी के अनुरोध से सफरदा बुलाये गये और मुजरा होने लगा।

फिर क्या था। इसी प्रकार मेरा साहस बढ़ गया। आज एक जगह, कल दूसरी जगह और परसों तीसरी जगह जाने आने लगा मतलब कि, रोज संध्या को मैं बाजारमें जाता और आठ दस रुपयों का खूनकर आता। पाठकगण! धीरे धीरे मेरा सारा भय जाता रहा और ऐसी आदत पड़ गई कि जिस दिन किसी कार्यवश घर से न निकल सकता या शामही को लौट आना पड़ता, उस दिन सख्त बेचैनी छा जाती। कहीं दिल न लगता, लाचार क्या करता, चुपचाप दिलपर पत्थर रख पड़ा रहता। और जब कभी किसी जगह देर होजाती। और पिताजी देर होने का कारण पूछते तब मैं इधर उधर का बहाना बता उन्हें शान्त कर देता।

एक दिन जब मैं अपने एक दोस्त के साथ बाजार से चला जा रहा था कि रास्ते में बंदगी करके एक आदमी जो देखने में सफरदा मालूम होता था और शायद कहीं उसे मैं देख भी चुका

था । सामने खड़ा हो गया और धीरे धीरे कहने लगाः—"बाबू साहब ! हम देखते हैं कि आप रोज दस पांच फूंककर चले जाते हैं परन्तु सब फजूल होता है !"

उसकी यह बातें सुनकर मैं ने अपने दिल से कहा, निस्सन्देह यह बहुत ठीक कह रहा है । रोज मेरे दस पांच गल जाते हैं । फिर उससे पूछाः—"हां तुम तो सच्च कहते हो ?"

उसने जवाब दियाः—"मैंने आप के लिये एक जगह तजवीज की है जहां थोड़े ही में रंग जम जायगा और काम भी हो जावेगा ।"

मेरे साथ वाले दोस्त ने कहाः—"फिर इस से बढ़ कर क्या चाहिये ।"

सफ० । साहब ! थोड़ा खरचा बहुत काम ।

सफरदा की यह बातें सुनकर मैंने अपने दिल में कहा । बेशक यह सफरदा बहुत ठीक कह रहा है । जब थोड़े ही में काम निकलता है, तो यों व्यर्थ मारे मारे फिरने से क्या फायदा ? पर अफसोस इस समय पास में एक पैसा भी न था । जो सौ पचास था, थोड़े ही दिनों में तप चुका था । लाचार मैं बड़े सोंच विचार पड़ गया कि क्या करूं कहां से रुपया लाऊं । इसके साथही इधर रह रह कर दिल भीतर से जोश मारने लगा ! उधर रंग फीका पड़ जाने के भय से मैं सफरदा से यह भी न कह सकता कि अच्छा कल आवेंगे । लाचार हो मैंने चोरी पर कमर बांधी और सफरदा से बहाना कर बोलाः-" अभी मैं एक बड़े जरूरी काम से जारहा हूं । लगभग आध घंटा के बाद लौटूंगा तुम यहीं मिलना ।"

पर उसके बदलने वाले चेहरेकी रंगत से मुझे जान पड़ा जैसे मेरी बातों पर उसे विश्वास नहीं हुआ । ठीकही है, विश्वास कैसे पड़ता इस पेशे के तमाम लोग एक दूसरे से चालें चला करते हैं । यार चाहे

रंडी की बातों में आ जाने पर वह कभी भी उसकी बातों का विश्वास नहीं करतीं और सदा सफरदाओं को भी वह शककी निगाह से देखती हैं और सफरदा भी उसी प्रकार उसे घूरा करते हैं। यह सुन सफरदा ने सलाम किया, मैं आगे बढ़ एक गली से चक्कर दे घर की तरफ चल पड़ा, रास्ते में सोंचने लगा किस प्रकार रुपया लेना चाहिये। आजतक मैंने कभी भी इतना खिलवाड़ी होने पर भी एक पैसा नहीं चुराया था। चोरी की बातों को सोंचने से कलेजा धक् धक् करने लगा,—चहरे का रंग उतर गया,—हवाइयों ने चेहरे को मलीन कर दिया। इन्हीं विचारो की तरङ्ग में कभी कभी इन बुरी बातों से दिल हटजाता और तबीयत में यह बात समा जाती कि यार चोरी न करो। पर साथही विलास की इच्छायें लालायित होकर मुझे चोरी करने पर नये सिर से मुस्तैद कर देतीं। इस कहावत के अनुसार कि " बदेमाल के भी हाथ पैर होते हैं। " मैं चोरी करने के विचार पर दृढ़ रहा। तेजी से चलकर दुकान के समीप पहुंचा, दूरही से झांक कर देखा पिता जी किसी से बैठे बात कर रहे हैं। ऐसा देखने से दिलको एक तरफ से कुछ फुरसत सी मिली। चट् पट् वहां से चल कर मैं घर आया। घर का किवाड़ संयोग से खुला हुआ था। किसी के पुकारने की भी जरूरत न पड़ी। घर में गया वहां भी संयोग या कुसंयोग ने मेरा साथ दिया। मेरी माता मकान के तीमंजिले पर यानी बैठक के ऊपर वाले कमरे में मेरी स्त्री के मैके से आई हुई मजदूरनी से बातें कर रही थीं।

बैठक में जा झट पट मैंने बाहर के शीशेदार किवाड़ों को खोल अपने साथ वाले लम्पट मित्र को वहीं नीचे खड़े रहने का इशारा कर अलमारी की ताली खोजने लगा। बाबू जी का कोट, कमीज, वास्केट एक एक करके सब देख डाला। पर कुंजी का कहीं भी पता न मिला। डिक्स की तरफ मुड़ा,—झट झट उसके कागजों को भी

उलट पुलट करे देखा। पर कहीं कुछ भी नहीं। निष्फलता से मेरा दिल थतमथा उठा, एक मिनट के लिये आंखों के नीचे अंधेरा छा गया। उदासी से मैंने अपने मित्र की तरफ देखा। मेरा चेहरा देखतेही वह सारा हाल जान गया। उसने नजदीक आ धीरे से कहा, दूसरी कुंजियों को लगा देखो। मैंने भी एक एक कर घर की तमाम तालियों को लगा देखा पर जब कोई लगती न दिखाई पड़ी तो कलेजे की धड़कन से मेरा शरीर पसीने पसीने होनेलगा।

आखिर में एक तदबीर याद आई। क्योंकि मैंने पहिले सुना था कि चोर लोग बहुधा तिल्लियों द्वारा ताला खोल डालते हैं। ऐसा ख्याल पड़तेही झट मैंने पिता जी का डेक्स खोल एक पतला सुआ निकाला। बड़ी मुश्किलों से मैंने उसे ताले में डाल इधर उधर घुमाया। कई बार पुट्र पुट्र की आवाज आई। देखा ताला खुल गया। साथही चेहरे पर एक पल के लिये खुशी के लक्षण दिखलाई पड़े। पर इस समय कलेजा पहिले की अपेक्षा बड़ी तेजी के साथ धड़कने लगा। बदन और हाथ में एक प्रकार की सुरसुरी सी पैदा होगई। ज्योंहीं मैंने सिकड़ी निकालने के लिये हाथ बढ़ाया त्योंही वह भी तेजी से कांपने लगा। धड़कती हुई छाती को कांपते हुए हाथों से दबा कर मैंने दिलको सम्हाला। इस ख्याल से कि कहीं कोई आता तो नहीं है दबेपांव उठकर इधर उधर देखा। जब कोई न दिखलाई पड़ा तो कांपते हुए हाथों से अलमारी को खोला। आगे ही के एक केश बक्स में बहुत से खुदरा नोट रखे हुए थे। झट उसे खोल उसमें से एक निकाल ही तो लिया।

एकाएक दिल के धड़कनेके साथ ही हाथ भी इतनी तेजी से कांपा कि वह नोट हाथों से छूटकर जमीन पर आ रहा। पर ज्योंहीं उसे उठाते समय मेरी नजर सामने की तरफ पड़ी है कि खून सख गया, और मेरे आंखों के नीचे अंधेरा छा गया।

पांचवां रंग

रातके आठ बजनेवाले थे। चारों तरफ आदमी ही आदमी दिखलाई पड़ रहे थे। खरीद बिक्री का बाजार खूब गर्म था ऐसे हीं समय में मलीन मुख, उदास चित्त, भग्न हृदय से मैं दुकानपर बैठा हुआ था कि एकाएक दालमंडी से बड़ा हल्ला सुनाई पड़ा। लोग अपनी अपनी दुकानों को छोड़कर दौड़ने लगे। कोई कहता खून हुआ, कोई कहता लट्ठ चली है, कोई कहता गुंडों में लड़ाई हुई है। मतलब यह कि जितना मुंह उतनी हीं बातें सुनाई पड़ने लगीं। लोगों को भागते जाते देखकर मुझ जैसे चंचल चित्त वाले को कहीं कल पड़ सकती है। मैं भी झठ मुनीम साहब से कि " अभी आते हैं। " कहकर अपनी रुपहली छड़ी उठायी और उधर ही को चल पड़ा। पहुंचकर क्या देखता हूं कि " मालती " के मकान के नीचे बड़ी भीड़ लगी हुई है। देखने के लिये चारों तरफ से लोग गिरे पड़ते हैं। मैं भी बड़ी मुश्किलों से धक्का खाता, भीड़ को चीरता हुआ भीतर जा पहुंचा और वहां जो कुछ देखा वह कम शिक्षा देनेवाला न था।

देखा कि, दो आदमी, जिनके कपड़े नये और खूब साफ थे। पर देखने में एक भलामानुस और दूसरा बदमाश जान पड़ता था। खून से तर बतर हो रहे हैं। उनके सिर से रक्त की धारा निकल कर उनके कपड़ों को अपने रंग में रंगे दे रही है। इतने में मेरे पीछे, भीड़ से सुनाई पड़ा " यार देखते जाओ, रंडीबाजी का यही मजा है। "

इतना सुनतेही मैंने पीछे पलटकर देखा। पर इसके कहने वाले को न पहिचान सका। लाचार चुप हो रहा। इतने में पुलिस-मैनने दोनों को गाली देकर कहाः-" बस अब सीधे थाने में चले चलो। "

गाली खाकर एक तो चुप हो रहा। पर दूसरे से जो जरा हृष्ट पुष्ट था गाली बरदाश्त न हो सकी। उसने त्योरी बदलकर कहाः- "देखिये साहब! गाली गोली दीजिएगा तो अच्छा न होगा।"

एक तो पुलिस! दूसरे मुजरिम के लिये? भला वह उस तमाशबीन की कैसे बरदाश्त करता! अभी तमाशबीन के मुंह से बात खतम ही न हुई थी कि उसने उसके मुंह में एक थप्पड़ जमाया। थप्पड़ का जमाना कहिये कि उसने भी उसे वैसाही जवाब दिया। दोनों तरफ से हाथापाई होने लगी। साथही "पुलिस से लड़ाई हुई! पुलिस से लड़ाई हुई!!" बड़ा हल्ला उठा। चारों तरफ के नाके के सिपाही दौड़ पड़े।

दमकी दममें कोड़ा जूता, लात फटकार उसने भीड़ को भगा दिया। इधर पुलिसमैन और दूसरे तमाशबीन में पटका पटकौवल हो रही थी और पहिला तमाशबीन विचारा पुलिसमैन की मदद कर रहा था। पर इन आये हुए सिपाहियों ने समझा कि दोनों मिलकर पुलिसमैन को मार रहे हैं। इससे उन सबोंने अपने अपने नालदार जुते उतार लिये और लगे मालती के सामने ही उनकी खबर लेने।

जब एक पानी पीट चुके तो फिर सिपाहियों ने दोनों की गरदन नापी और धक्का देते हुए थाने को ले चले। आगे आगे सिपाही व दोनों ऐयाश और पीछे पीछे तमाशबीनो का दल चल पड़ा। भीड़ थाने के फाटक के पास जा खड़ी हुई। पर मैं सिपाहियों के साथ भीतर चला गया। वहां जाकर मैंने थानेदार को सलाम किया। उन्होंने भी बंदगीअर्ज कहकर पास की कुर्सीपर बैठने का इशारा किया। उनके इस प्रकार आदर के साथ बैठाने का कारण केवल यही था कि ये पिता जी को बहुत मानते थे और वे भी इनकी कम खातिरदारी न करते थे।

मेरे बैठ जाने के बाद थानेदार साहब ने सिपाहियों से पूछाः- "क्या मामला है ?"

एक ने आगे बढ़कर कहाः—" साहब हम तो अपने नाके पर थे कि हल्ला हुआ कि सिपाही मार खा रहा है। इससे दौड़े गये और सचमुच में इन दोनों को मारते पाया।

थाने०। किसको मार रहे थे।

सिपा०। यदुनन्दनसिंह को।

थाने०। अच्छा इन दोनों को हवालात म बँद कर दो।

यह सुनते ही भलेमानुस तमाशबीन की आत्मा कूँचकर गई और उसने हाथ जोड़कर कहाः-" हजूर! हमने नहीं मारा है बल्कि इसी साले ने मुझे और ठाकुर साहब को भी मारा है।"

थाने०। चुप रह। सुअर कमजात। (सिपाही से) ले जाओ जी।

इसके बाद नाकेवाले सिपाही तो अपने अपने पहरेपर चले गये। पर फाटक के सिपाहीने दोनों की गरदन नाप मुंशी जी के यहां पहुचाया। कौतुकवश मैं भी वहीं जा बैठा। इन दोनों को देखते ही मुंशी ने चपरासी को घुड़की बतलाकर कहाः-" यों क्यों ले आया है। जरा पूजाकर ला।"

यह सुनते ही मुंशीकी बगलका सादी वर्दी में बैठा हुआ एक आदमी जिसके चेहरे से क्रूरता टपकी पड़ती थी उठा। और एक की गरदन नाप, लगा जूतों से उसकी खबर लेने। जब वह एक की मिज़ाजपुर्शी कर चुका तो फिर उसने दूसरे की भी इसी प्रकार खातिरदारी की। मतलब यह कि मेरे सामने ही दोनों की जूतों से खूब खबर ली गई। मार पड़ने से पहिला आदमी जो देखने में भला मालूम होता था सिसक २ कर रोने लगा। इसपर मुंशी ने उसे बहुत बहुत गालियों से चुप कराकर कहाः-" पैदा हुए रईस के घर में निकसे रंडीबाजी करने! (दूसरे को लक्ष करके) यह साला

तो बदमाश है ही है। इसको क्या कहना ! (सिपाही से) इसे और दस लगाओ।

उस दूसरे तमाशबीन यानी जो देखने में बदमाश मालूम होता था कहाः—"दस नहीं साहब ! बीस ! ! (पहिले तमाशबीन को लक्ष करके) मेरी रंडी के यहां यह सरवा रंग जमावत रहल है। जाओ बच्चू ! आज किसी अच्छे का मुंह देखके उठे रहे हो। नहीं तो इतना पीटते कि छट्टी का दूध याद आ जाता।"

यह सुनकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ कि बदमाश को मेरे सामने ही पचासों जूते उड़गये किन्तु, उसपर जरा भी बल न पड़ा। सच है "रसली जल जाती है पर उसकी ऐंठन नहीं छूटती है।" चाहे बदमाश ऊपर से कितनी ही डींग क्यों न लें पर मेरी समझ में तो जरूर उनपर मारका असर होता है। क्योंकि जली हुई रसली देखने ही में ऐंठनदार मालूम होती है, पर छूने में वह राख के सिवाय दूसरी चीज नहीं आती। इसके बाद जब मैंने गौर के साथ उस भलेमानुस की तरफ दृष्टिपात किया तो जान पड़ा आज उसकी खूब मरम्मत होगई है। अब इस जिन्दगी में फिर वह तमाशबिनी का नाम न लेगा ! किन्तु क्यों कर कहूं, क्योंकर इसपर जोरदूं। मैं अब अपनी बातों को सोंचता हूं। क्या आज की घटनाओं ने मुझपर कम असर किया था लेकिन क्या हुआ ? फिरभी मैं उस समय तक इस में चीटें की तरह चिमटा रहा जबतक कि अपनी इस वर्तमान दशा को न पहुंच गया ! ! ! निंसन्देह ! तमाशबिनी एक बड़ी बुरी बला है। इसके पाले जो एकबार भी पड़जाता है वह फिर उस समय तक जबतक कि उसपर ईश्वर की कृपा न हो नहीं दूर हो सकता ! फिर मैं कैसे विश्वास करूं कि वह आज की मरम्मत होजाने से सदा के लिये तौबा कर बैठा होगा ! इससे मेरे प्रिय पाठकों को तमाशबिनी के नाम से कानों पर हाथ रखना चाहिये।

इस समय थाने का दृश्य बहुत करुणामय था। मुंशी की कड़ाई,सिपाही का पैशाचिक अत्याचार,एक कलम उस पर इतनी बेरहमी की मार का दृश्य मुझसे देखा न गया। मैं अब उठकर चलने ही वाला था कि किसी के पैरों के छड़ों की छनछनाहट और कई आदमियों के आनेकी आहट मालूम हुई। कौतुकवश मैं दालान की तरफ ताकने लगा। इसके दो ही तीन मिनट बाद चार आदमियों ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। आनेवालों में पहिला वर्दी और लाल पगड़ी वाला सिपाही था। उसके बाद मुस्कुराती हुई वेश्या मालती थी। बाकी दोनों में एक सफरदा और एक उसका मामा था

मालतीने बड़े नाजों नखरे के साथ अपने मेंहदी लगे हुए हाथों से मुंशी जी को अदाब अर्ज कहा। सच तो यह है कि उसने इस ढंग से मुस्कुराते हुए होठों से आदाब अर्ज की आवाज़ निकाली थी कि मेरा दिलभी मचल गया। पर इन बातों ने उस पाखान हृदय मुंशी पर जो रंडियों के भी उस्ताद होते हैं कुछ भी असर न किया। बल्कि उसने बड़ी डांट और गाली देकर पूछाः– "कोठे पर बैठ कर खून करवाती हो, देख, मैं तेरी भी खबर लेता हूं।"

गोली खाने से मालती का चेहरा फक़ होगया। उसके चहरे का वह गुलाबीपन जो थोड़ी देर पहिले था पीलेपन से बदल गया। चेहरे पर हवाइयां उठती दिखलाई पड़ने लगीं। बड़ी मुश्किलों से उसने अपने को सम्हाला कि मुंशीने फिर अपनी खूनी आंखों से उसे घूर और डांटकर कहाः–" घबराओ नहीं मैं तुम्हारी भी खबर लिये बिना नहीं छोडूंगा।"

वराङ्गना ने थर थराती हुई जबान से कहाः–" जनाबआली मैंने क्या कुसुर किया है।"

मुंशी ने गरदन हिलाकर जवाब दियाः–" इस फेसाद की जड़ तो तुम्हीं हो। यह तो मैं खूब जानता हूं।"

यह सुनकर वराङ्गना कांप उठी । उसके हवाश फाख्ता हो गये । उसने अपने मामा के कान में कुछ कहा। उसने भी इशारे से उस सादीवर्दी वाले चपरासी को अपने पास बुला एकांत में ले गया। वहां की कुल बातें तो सुनाई न पड़ी पर इतना जरूर सुनाई पड़ा कि " यों तो छुटकारा हो नहीं सकता । "

इससे हमारे अनुभवशील पाठकगण, जो कि पुलिस की नस नस से जानकारी रखते होंगे यह अवश्य समझ गये होंगे कि उनमें कुछ लेन देन की बात तय पाई होगी । नहीं तो इतनी घुड़काहट के बाद और ऐसे मामले में जहां कि एक पुलिसमैन पीटा गया हो, वहां कैसे साफ साफ छुटकारा हो सकता है ।

अब जरा इधर की सुनिये । जिस समय वह सादीवर्दी वाले चपरासी ने, जो मालती के मामा से बातें करने गया था लौटकर आया और मुंशी जी के कान में मंत्र फुंका तो मुंशी की वह खूनी नजर जो वराङ्गना को निगल डालने को तयार थी कुछ ठंडी हुई और उसने उसे एक तरफ बैठजाने का इशारा किया और उससे पूछाः-" तुम इन दोनों में से किसी को जानती हो । "

मालती ने उत्तर दियाः-" जनाबआली ! इनको पहिचानने की कौन कहे। इनको तो आजके सिवाय मैंने कभी देखा भी नहीं था । "

इस पर उस भलेमानुस तमाशबीन से रहा न गया उसने कहाः-" हैं ! ऐसा क्यों कहती हो । क्या मैं तुम्हारे यहां महीनों से नहीं आता हूं । '

माल० । बिलकुल झूठ । सरासर झूठ । क्या मुझे भी अपने साथ इस मुकदमें फंसाना चाहते हो । "

भले० म० । मैं भला तुम्हें क्यों फसाना चाहने लगा, मुझे तो इस बात का रंज होता है कि तूं झूठ बोलती हो ।

इतना सुनकर मालती ने अपनी तीवर बदल दी और बोलीः-

" तू खुद झूठा है, मैं क्यों झूठ बोलने लगी। (मुंशी की तरफ इशारा करके) देखिये मुंशी जी, इस जुतीखोर की चाल तो देखिये। "

यह सुनकर मर्मभेदी मुंशी ने अपनी गरदन हिला दी और भलेमानुस तमाशबीन ने जरा जोर से कहाः—

" अरीवेश्या ! जूते की मैल ! तूं खुद जूतीखोर है। क्या तुझे मैंने जूतो में रुपये टकवा कर नहीं पीटा है। "

माल०। (बिगड़कर) अपनी किसी मां बहिन को जो बाजार में बैठती होंगीं तूने पीटा होगा। मुआ ! तेरी क्या मंजाल जो तूं मेरी तरफ ताक भी सके। टुकड़हा ! लुचा ! मां करे पिसौनी कुटौनी पुतवा दुर्गादास। " मां बहिन तो किसी और तरह पेट पालती होंगी और यह बेटा रंडीबाजी करने चले हैं। (बैठेहुए सिपाहियों की तरफ इशारा करके) देखिये साहब ! क्या मेरे यहां आनेवालों की ऐसीही शक्ल होती है। "

भले० म०। यह शक्ल क्या तेरे बाप से कम है। अगर तुझे एक डोमड़ा, रुपया दे तो तू उसकी पैर दबाने लग जाय। झूठी मक्कार !

माल०। तूं झूठा और मक्कार। यह सब काम तेरी मां बहिने करती होंगी हम सब तो....

मालती की बातों का पारा इस समय थर्मामेटर् के शून्य स्थान पर चढ़ गया था। उसकी बेवफाई और रुखाई की बातें, यहां तक बढ़ीं कि मुझसे भी सहन न हो सकीं। मैं उसकी बेमुरव्वती पर झुंझला कर उठ खड़ा हुआ। मुंशी ने कहाः—" क्या साहब चले। "

मैंने कहाः—" जी हां अब बहुत देर होगई है। "

इसके उपरांत सलामअलैक हुआ। और मैं मालती की एकएक बातों को सोंचता हुआ चला जा रहा था कि, एकाएक किसी के हाथ लगने से चौंक पड़ा और फिरकर देखा तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

छठवां रंग।

"हैं तुम कौन ?"

हाथ रखनेवाले ने मुस्करा कर उत्तर दियाः-"क्या नहीं पहचान सके।"

"नहीं नाम बतलाओ।"

उसने कानके पास मुंहलाकर कहाः-"छैलबिहारी।"

अब जो मैंने गौर से देखा तो अपने उस लंपट साथी को जो रुपया चुराने वाले दिन दरवाजे परखड़ा था, अपने सामने पाया। मैंने पूछाः-

"ऐसा भेष क्यों बदले हुए हो। कहां बारनिश का चमचमाता बूट व सफा कपड़ा और कहां यह फकीरी भेष और गेरुआ बस्त्र!"

छैल०। इसका लम्बा चौड़ा वृत्तांत है। अब यहां ठहरने का मौका नहीं। आगे चलिये तो कहते हैं।

मैं,-क्यों बात क्या है ?

छैल०। (कानमें) हमारे नाम वारंट है।

यह सुनते ही मेरा बदन कांप उठा। पर उससे मुहब्बत भी इतनी थी कि साथ छोड़ नहीं सका। लाचार वहां से चलकर जब एक गली में पहुंचा तो पूंछा। जिस पर उसने यह बतलाया कि मट्ट में कल जुआ पकड़ा गया है। मेरे बादियों ने मेरा नाम भी बतला कर,-मेरे नाम वारंट कटवा दिया है। इससे मैं छिपा छिपा फिरता हूं। पर जब आपकी मुहब्बत के मारे न रहा गया तो यों भेष बदलकर आप से मिलने के लिये आया हूं।

इन लम्पटों की फरेब भरी बातों का मैं कुछ अर्थ लगा ही नहीं सकता था। मैंने अपने दिलमें कहा कि देखो लोग कैसे बुरे होते हैं जो नाहक दूसरे को भी फंसाते हैं।

मैंने पूछाः–" रँगीलेनाथ और छबीलेदास कहाँ हैं ?"

छैल०। बैठके में बैठे हैं और आप ही का इंतजार देख रहे हैं

मैं,—कौन से बैठके में ?

छैल०। क्या आपको नहीं मालूम है क्या ?

मैं,—नहीं मुझे तो बैठके का हाल नहीं मालूम है।

छैल०। नमालुम होगा, क्योंकि अभी कुल पन्द्रह दिन हुए हैं कि वह भाड़े पर लिया गया है। बैठका बड़ा सजीला और बड़े मारके का है।

मैं,–(जरा आश्चर्य्य दिखाकर) किस जगह पर है ?

छैल०। यहीं पासही नई सड़क पर तो है।

इतनेही में मैं छैलबिहारी के साथ नई सड़क पर पहुंच गया। सड़क पर थोड़ी ही दूर चलने पर दहने हाथ एक कोठी दिखलाई पड़ी। जिसके चारों तरफ हरे हरे वृक्ष फूलों से लदे लगे हुए थे। जिनकी मीठी मीठी महक से मेरा दिमाग तर हो गया और मैंने पूछाः–" कहो भाई बैठका कहां है ?"

उसी की तरफ इशारा करके छैलबिहारी ने उत्तर दियाः– " यही तो है।"

मैं,–यह तो बड़ी उम्दी कोठी है। क्यों हो,–यह तो किसी बंगाली राजा की है न ?

छैल०। जी हां। बड़ी मुश्किलों से आपही के लिये पचास रुपये महिने पर ली गई है।

यह सुनते ही मेरा माथा ठनका। पर मैं कुछ न बोल चुपचाप ऊपर चला गया। देखा कमरा खूब शीशे तस्वीरों और बड़े बड़े आईनों से सजा हुआ है। कायदे से दरी चांदनी बिछी है तिसपर गद्दा मसनद लगा हुआ है। दहने हाथ फूलदानों में उम्दे उम्दे फूलोंके गुच्छे रक्खे हुए हैं। सामने की खिलती हुई कलियों के

गजरे भी अपनी मीठी और दिलको खींचनेवाली महक से बैठके को सुगंधमय बना रहे हैं। मतलब यह कि कमरा खचाखच ऐश के सामानों से सजा हुआ था।

ज्योंही मैंने कमरे के भीतर पैर रखा है त्योंहीं रंगीले और छबीले ने उठकर आओभगत से मुझे हाथ थामकर बैठाया। फिर दरवाजे पर बैठे हुए खिदमतदार को पान इलायची के लिया भेजा।

पान इलायची आई। सब लोगों ने खाया। फिर इधर उधर की गप्प छंटने लगी। बात ही बात में मैंने कहाः-" यार बैठका तो बड़ा उमदा हाथ लगा।"

रंगीले ने कहाः-" जी हां, बहुत छानबीन के बाद इसीको इस लिये पसंद किया गया है कि यह बड़े मौके का है। दूसरे हम लोगों के बैठने के लिए कोई ऐसी जगह भी नहीं थी कि जहां अपने दोस्तों के साथ बैठकर हा हा हू हू किया जाता।

मैं,-बहुत ठीक। हां यार बड़े मौके का है। (चारों तरफ देखकर) मगर यार तुमने साजा भी खूब है।

छैल०। इस काम में तो आप पूरे उस्ताद हैं।

इस विषय की बात यहीं खतम हो गई। थोड़ी देर चुप रहने के बाद छबीले ने रंडियों की बातें छेड़ दीं। धीरे धीरे एक एक करके सब ने सारी रंडियों का बखान कर डाला। मेरी समझ में श्यद ही दो चार वेश्याओं के नाम बाकी रह गये होंगे। इस भूल में चाहे उनकी बदकिस्मती समझिये चाहे उनकी भूल।

इन वाराङ्गनाओं की तारीफें सुन सुनकर मेरे दिल की कली भी धीरे धीरे खिलने लगी और मैं भी रह रहकर उसमें पार्ट (part) लेने लगा। बातही बात में रंगीले ने कहाः-" अभी आपने देखा ही क्या?

छैल०। क्या कहें, कहीं मेरे बाप ऐसे अमीर न हुए।

छबी०। सचमुच में अगर गौर से देखें तो साफ साफ मालूम होजाता है कि जिसने इस जिंदगी का लुफ्त न उठाया उसकी जिन्दगी अकारथ है।

मैं उनकी बातों को सुन लालायित हो उठा और बड़े अफ़सोस के साथ बोलाः-"क्या करें भाई साहब! अगर रुपया हाथ में होता तो मैं भी जिन्दगी का कुछ लुफ्त उठाता।

छैल०। हां इसमें रुपये का तो खेल ही है।

मैं,-मैं जानता हूं कि मेरी किस्मत मैं लड़रबड़र नहीं है।

इतने में रँगीले जो देर से चुपचाप बैठा था और ऐसा जान पड़ता था कि मानों वह किसी बिचार में निमग्न है, बोल उठाः-"क्यों नहीं है?"

मैं,-कैसे कहूं तुम्हीं बतलाओ? देखो न उस दिन मेरी कैसी दुर्गति हुई। खैर हुई कि माताजी ने आके मुझे बचा लिया नहीं तो भला पिता जी कब के छोड़नेवाले थे, इतनी जूतियां लगाते कि मेरे सिर के रहे सहे बाल भी झड़ जाते। इतना होने पर भी मुझे आठ दस लात और पड़ाके लग गये। इसी धरपकड़ में माता जी को भी चोट लग गई। बिचारी तमाम रात हाय हाय करती रहीं। हां भई छैलबिहारी, तुम कैसे भगे।

छैल०। क्या कहूं भई साहब, बड़े अफ़सोस की बात है कि उस दिन खैर हो गई नहीं तो मेरी इज्जत भी न बचती। मैं चुपचाप आपके बैठके की तरफ देख रहा था कि एकाएक मुझे "कौन खड़ा है।" सुनाई पड़ा। मैंने सिर उठाकर देखा तो आपके पिता जी को अपने पास पाया। लाचारी में मैं तुम्हें भी सावधान न कर सका और अपनी जान लेकर भागा।

रंगी०। अब तो घर से तुम्हारा इतबार उठ गया होगा।

मैं,-। बिलकुल उठ गया है। बल्कि जब कभी मैं पिता जी की

तरफ देखता हूँ तभी उनकी आंखे चढ़ी और मुझे शेर की तरह घूरती हुई दिखलाई पड़ती हैं।

छैलविहारी ने मेरे अफसोस में अफसोस मिलाकर कहाः–" क्या कहें भाई साहब, कुछ कहा नहीं जाता। उस दिन आपकी बात ऐसी फिकी पड़ गई कि सफरदा के सामने आते लिहाज मालूम होता है।

मैं,—लिहाज की बात ही है। उसने अपने दिल में कहा होगा कि बस लम्पट ही है।

छबी०। तो फिर कहीं से कुछ बन्दोबस्त लगाओ। क्योंकि आज कल लखनऊ के एक नई रंडी आई हुई है। अगर वह हाथ न लगी तो बड़े अफसोस की बात होगी।

मैं,–कहां से कुछ बन्दोबस्त लगाऊं सब जगह तो अंधकार ही अंधकार दीख पड़ता है।

रंगी०। क्या करें मेरे पास जो कुछ था उसे तो मैंने इसी बैठके के साजने में लगा दिया। इस पर भी अभी शीशेवाले के ९००) कर्ज हैं।

मैं,–(बड़े अफसोस के साथ) इसीसे कहते न हैं कि मेरे जिन्दगी में ऐशो आराम नहीं है।

मेरे मुंह से उपरोक्त शब्द निकलने थे कि, रंगीले का मुरझाया हुआ चेहरा एकाएक दमक उठा, ऐसा जान पड़ा मानों वह कोई भूली हुई चीज पा गया। उसने फिर कहाः–" क्यों नहीं है।"

मैं,–फिर रुपया कहां से आवेगा।

रंगी०। कर्ज लिया जावेगा।

कर्ज का नाम सुनकर मेरे रोयें खड़े हो गये। एकाएक ख्याल आया कि कहां मेरा बाप लोगों को कर्ज देता फिरता है और कहां अब मैं दूसरे से कर्ज लेने चला।

रँगीले ने मुझे सोंचग्रसित देखकर पूछाः–" आप ऐसे सोंच में क्यों पड़ गये।

मैं,—कुछ नहीं।

रंगी० । इसमें सोंचने बिचारने की कुछ जरूरत नहीं है। यह तो दुनियां का कायदा ही है। जरूरत पड़ने पर न मालूम लोग क्या क्या करते हैं।

इसके बाद इस विषय की और बातें न हुई। धर्म घड़ी ने टन टन दस की आवाज दी। मेरे उठने के साथ ही तीनों लम्पट साथी भी उठ खड़े हुए। सबको साथ लिये, टहलते टहलते मैं बाजार में पहुंचा और और पूछाः—"वह लखनऊ वाली कहां पर ठहरी है?"

छबी० । जरा और आगे चलिये।

दो मिनट में चारों आदमी उसके खिड़की के नीचे जहां एक शौकीन तमोली की दुकान थी, पहुंच कर खड़े हो गये। इसके साथही रंगीले ने एक अठन्नी फेंकी। धड़ाधड़ पान के घोड़े दौड़ने लगे। पान खाकर ज्योंहीं मैंने उसकी तरफ सिर उठाकर देखा त्योंही उसने भी वह नैनसर चलाया कि मैं अपने काबू से बाहर हो गया।

सातवां रंग

घर लौटने की आज्ञा मुझे नौ ही बजे की थी। पर दस बैठके ही में बज गये थे। इसके अतिरिक्त पास में सिवाय थोड़े पैसे के और कुछ न था। लाचार दिल ममोस और पिताजी के भयसे घर को आया। घर में पहुंचते ही मैंने पहिले घड़ी पर नजर डाली। देखा साढ़े दस बजे चुके है। पर किसी ने जरा भी चूं न किया। सच है बुरे कर्म्म के लिए रास्ते खुले रहते हैं। ऐसी ही यदि किसी के ऊपर भगवान की कृपा हुई तो रास्ते में उसे पहिले ही पहल ठोंकर लगती है। नहीं तो नहीं। क्योंकि मेरे देखने में प्राकृत का कुछ ऐसा ही नियम है कि बुरा कर्म करने वाले एका-

एक पहिले बढ़ जाते हैं, उनके लिये कोई भी रुकावट नहीं होती। लेकिन ज्योंहीं धीरे धीरे करके पाप का घड़ा भर जाता है त्यों हीं वह एकाएक ऐसा फूटता है कि उसको (पापी को) कहीं ठहरने तक की जगह नहीं मिलती।

घरमें न किसी ने मुझसे न कुछ पूछा और न मैंने कुछ कहा। चुपचाप ऊपर चला गया। माता ने आदर के साथ खाना परोसने के लिये आज्ञा दी। मैं भी हाथ पैर धो पीढ़े पर बैठ गया। इधर स्त्री ने थाल में भोजन ला सामने रख दिया। जल्दी जल्दी करके मैंने भोजन किया और झट इस भय से सयनागार में चला गया कि कदाचित् पिता जी कुछ कह न बैठें।

सोने को तो चला गया पर रातको नीन्द कहां। हरवक्त उस लखनऊवा की सूरत आंखों के सामने नाचती रही, सोते जागते करवट बदलते मतलब कि किसी तरह मैंने वह रात तो बिताई। पर सबेरे उठते ही रुपये की फिक्र ने आ दबोचा। बड़ी तरद्दुद में पड़ गया। घर से कुछ मिलने की उम्मीद ही न थी। लाचार फिर वही कर्ज का नजारा आंखों के सामने फिरने लगा। चार नाचार मैंने अब उसी रास्ते का अवलम्बन करना स्थिर किया। इस समय मुझे गो कर्ज मूर्ति, भयानक दिखलाई पड़ती थी तथापि मैं उसको पकड़ने के लिये बेचैन हो रहा था। धीरे धीरे घड़ी में दस बजा मैं भी भोजनादि से छुट्टी हो घर से निकल नई सड़क वाले बैठके में पहुंचा। मेरे लम्पट साथी वहीं बैठे हुए ऐसे दो आदमियों से बातचीत कर रहे थे जिनकी चाल ढ़ाल बिलकुल महाजनों के फेरीदारों सी थी। मुझे देखते ही रंगीले ने कहा,—" लीजिये आ गये। "

इतना सुनते ही दोनों फेरीदारों ने गरदन फेरकर मेरी तरफ देखा मुझे बंदगीकर एकने रंगीले से कहा:—"बाबू साहब को तो हम जानते हैं। यह तो अमुक रईस के लड़के हैं। इनको भला किस बात की कमी है।"

फेरीदार के मुंह से इतना सुनते ही मेरा सिर नीचा होगया। तबीयत में तो आई कि कहदें कि कुछ आवश्यकता नहीं है। पर साथही और ठिकाना न होने वाले विचारने मुझे सच्चे राह से नीचे गिरा दिया। मैं कुछ न बोलकर चुपचाप वहीं एक गद्दे पर लेट रहा। थोडी देरतक उनलोगों से बातें होती रहीं। बादको फेरीदार उठकर चल गये और रंगीले ने मुझे लक्ष करके कहा:—

"रुपये का तो कहीं भी बन्दोबस्त नहीं होता था। बमुश्किल इन दोनों फेरीदारों को साट पियरी पर रहनेवाले एक महाजन को ठीक किया है। सो वह भी इस शर्त पर राजी हुआ है कि जितना देगें उससे दूने की रसीद लिखावेंगे। और ....

मैं,—(बात काटकर) बाप रे बाप ! क्या एक लेकर दो की रसीद लिखनी होगी यह ....

छैल०। (जरा तीवर बनाकर) यह सब तो ऐसा करते ही हैं। हमीं ने एक बार हजार की रसीद लिखकर पांचसौ लिया था।

यह सुनकर मैं सोंच में पड़गया। मनमें कहने लगा, क्या इस दुनिआँ में ऐसी लूट होती है। लें एक और रसीद दें दो की। तिस पर ब्याज !

मैं अभी इन्हीं बातों को सोंच रहा था कि दो तीन आदमियोंके आने की आहट मालूम हुई। धम् धम् करके तीन आदमी ऊपर आ पहुंचे। इनमें तो दो वही पहले के फेरीदार थे। बाकी तीसरा एक मुनीम था जो कंधेपर एक थैली रखे हुए था।

ऊपर आतही उसने थैली को दे मारा और मुझसे पूछा:— "कहिये कितना चाहिये ?"

उसका इतना पूछना था कि मेरे आंखों के नीचे अंधेरा छा गया। दिल में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। मैंने अपने हृदय में कहा:—"कहां मेरा बाप खुद ही दूसरों को कर्ज देता है और

कहां आज स्वर्ग मैं लेने चली ....

इतने ही में उस मुनीब ने कहाः—" बोलिये साहब, जल्दी कीजिए क्योंकि मुझे दुसरी जगहों भी जाना है। "

यह सुनकर मैंने अपने लम्पट साथियों की तरफ देखा। रंगीलेने कहाः—" पांच सौ ले लीजिए।

मैं,–नहीं पांच सौ क्या होंगे। एक सौ काफी है।

छबी०। हां और क्या! फिर देखा जायगा।

यह सुन कर मुनीम ने पचासी रुपये गिनकर मेरे सामने रख दिये और मुझसे कहाः–" बड़ी देर होगई है, दो सौ की रसीद झटसे लिख दीजिये! "

मैं,–क्या दो सौ की?

मुनी०। (रंगीले से) कहिये साहब! आपने क्या इनको समझा नहीं दिया ....

मैं,––(बात काटकर) समझा क्या देंगे, क्या कहीं भी ऐसा हुआ है।

मुनी०। एक नहीं हजारों। दिन रात हम लिखाते ही रहते हैं।

मैं,—चोट्टों से लिखवाते होंगे।

मुनी०। चोट्टों से बातें कौन करता है। इसके अलावे यह भी समझने की बात है कि आज तो आप देंगे नहीं। जब दादा मरेंगे तो बैल बिकायगा।

छैल०। यह तो ठीक ही है। पर नादहेन्दा तो हैं नहीं। ईश्वर की कृपा से तो इनके यहां खुदही लोगों को दिया जाता है।

मैं,–अरे भाई यदि ऐसा है तो सवा सौ की लिखवा लो। मुझे मारना तो है नहीं पर मौका ....

छबी०। हां भई। कुछ रियायत तो जरूर करनी चाहिये। यदि ऐसा ही है तो डेढ़ सौ का लिखवी लो।

यह सुनते ही एक फेरीदार जो जरा लम्बा चौड़ा कंजी आंखों वाला था,-जरा रुखियाकर बोलाः—

" मालूम होता है कि आपको लेना नहीं है। चलिये उठिये मुनीम साहब ! "

यह सुनकर मुनीम ने रुपयों को समेट कर थैली में डाल लिया और जाने के लिये खड़ा हो गया तो रंगीले ने उठ बड़ी मिन्नत और समाजित से बैठाया और कहाः–" लाइये गिनिये। "

मुनीम ने फिर पचासी गिन कर मेरे सामने रख दिये और मैंने कहाः–" यह पद्रह कम क्यों ! "

तीनों ने तवा होकर जवाब दियाः–" क्या हम लोग किसी के नौकर हैं, क्या महाजन के चार रुपये से ही हम लोगों के पेट भरते हैं। (जूतों की तरफ इशारा करके)देखिये चार के तो हम लोग जूते पहिनते हैं। "

देखा पाठक ! आजकल के मुनीम और फेरीदार ऐसे होते हैं कि भोले भाले महाजनों की रकम को थोड़े से फायदे केलिये फेंक देते हैं। यदि थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि मेरे बाप ने मुझे नालायक कह अपनी जायदाद से खारिजकर निकाल दिया होता तो बिचारे महाजन का पचासी तो चला जाता। यही कारण है कि आजकल कोठियों का ज्यादातर दिवाला निकलता है। सावधान ! महाजनो ! सावधान !!!

उसकी बात सुनकर मैं अवाक् सा हो रहा। पर उस पन्द्रह के लिये बहुत देरतक कहा सुनी होती रही। बड़े वादा विवाद के बाद नब्बे पर बात ठहरी। नब्बे लेकर मैंने दोसौ का पुरजा उसके हवाले किया। उधर वह सलाम करके चले गये और इधर रंग बिरंगी मंसूबे गंठे जाने लगे।

आठवां रंग।

धर्म्मघड़ी ने टनाटन दसकी घंटी बजाई। मैं जल्दी के कारण हड़बड़ा कर उठा कारण कि उस दिन पिता को पंजाब मेल से बाहर जानवाले थे। जल्दी जल्दी चलकर घर पहुंचा तो पिता जी रवाना हो गये थे। ऊपर गया तो माता जी बिगड़ने लगीं। लगभग पांच मिनट तक बिगड़कर उन्होंने कहा,—जल्दी खाना खालो और जाकर दुकान पर बैठो। यह तो मेरे मनकी बात हुई,—मैं तो छुट्टी चाहता ही था। झट भोजनकर दुकान पर आया,—पर यहां तबियत बिलकुल न लगी। बार बार दिल में यही ख्याल पैदा होता था कि कब संध्या हो और कब बाईजी के यहां पहुंचे। बमुश्किल इधर उधर करके दिन बिताया घड़ी में ज्योंहीं चार बजे त्योहीं फारिग हो, ठाठ बदल, आंखों में फैशनएबुल चश्मा लगा,—हाथ में रुपौली छड़ी ले मैं उसी वेश्याबाजार से टहलता हुआ नई सड़क वाले बंगले में पहुंचा, देखा तो ह्विस्की की बोतल लुड़की हुई है और तीनों लम्पट दोस्त बेखबर अंटाचित्त पड़े सो रहे हैं उनके कय से गद्दा तरातर होगया। शराब की बदबू से सारा कमरा बड़ा गंदा होगया है उसकी दुर्गंध ऐसी थी कि नाक फटी पड़ती थी, और ऐसा जान पड़ता था मानो मुझे भी कय हो जायगी। इस समय वह सजीला कमरा न था बल्कि नर्क का एक भडम्भादार कुंड था।

यह सब देखकर भी मुझ से वहां से उठा न गया। नाक को रूमाल से दबाकर मैंने नौकर को पुकारा। दो तीन बार पुकारने पर वह उठकर आया। देखा उसकी आंखें भी सुर्ख हो रही हैं। चेहरा उतरा हुआ है। सूरत देखने से जान पड़ा इसे ह्विस्की की थोड़ी ही महक लगी हुई है। निदान उसकी सहायता से मैंने रंगीले और छबीले को उठाया। उन लोगों का हाथ मुंह धुलवाया,—सर पर पानी छुड़वाया। कुछ ठंढक पहुंचने से उनका चित्त सम्हला

और जब वे आपे में हुए तो दोनों ने खुद हाथ पैर धोया, फरागत हो कुवें के ठंडे पानी से नहाकर तैयार हुए । इधर सूर्य भगवान डूबगये थे । जरा जरा अंधेरा होगया था कि तीनों आदमी टहलते हुए बाई जी के कोठे के नीचे पहुंचे, तमोली ने पान दिया । तीनों आदमी अभी पान खाही रहे थे कि एक सफरदा कोठे से उतरा हुआ आया और बंदगी कर कहने लगा, " चलिये बुला रही हैं।" मुझको जाना स्वीकार ही था, चट्ट उसके पीछे अपने दोनों साथियों की तरफ देखकर चल पड़ा । वहां पहुंचते ही बाई और नायिका दोनों ने बारी बारी से सलाम किया । लेकिन नायिका की अपेक्षा नौची ने इस ढंग से मुस्कुराते हुए होंठो और नाजो अदा से सलाम किया कि मेरा दिल बाग बाग होगया । खुशी से जाकर मैं आगे जरा उसके पास जा बैठा । मुझे पास बैठतेही वह थोड़ा पीछे हटकर दूर बैठ गई । इसके बाद मिजाजपुर्शी की बातें चलीं। पान पत्ते आये फिर मुजरे का प्रसङ्ग आया । सफरदा तैयार ही थे । आज्ञा पातेही वे झूम झूम कर तबला बजाने लगे । इसके बाद एक खिदमतगार ने एक हलका जोगिया रंग का खूब चूना हुआ दुपट्टा ला बाई जी को दिया । उसने भी बार बार अपने सामने के टंगे हुए आईने की तरफ देख देख मेंहदी लगे हुए हाथों से बालों को सवांरते और मुस्कुराते हुए उस दुपट्टे को ओढ़ा । तराना शुरू हुआ । फिर मेरे साथी की राय के अनुसार वह थियेटर के रंगीले गाने सुनाने लगी ।

गाते गाते उसके सिरका दुपट्टा जरा पीछे को हटगया कि उसने ढलके हुए दुपट्टेको सम्हाल कर,-"चलो हटो जाओ न छेड़ो सैइयां" को इस तरह बताया कि मेरा दिल आपे से बाहर होगया और मैं तस्वीर की तरफ उसकी तरफ देखने लगा ।

मेरे इस भाव को देख रंगीले ने उससे कहा:-" देखो,

आज शिकार निकल न जान पावे ।"

नौच० ! (मुस्कुरा और नैनसर चलाकर) बाइ साहब ! आप भी खूब कहते हैं ।

जब गाना खतम हो गया तो मैंने खुद अपने हाथों से बाई जी को पान दिया और उसने भी तसलीम कह के लिया तो छबीले ने कहाः-" अगर आपको गौहरजान कलकत्ते वाली की ठुमरी झंझौटी " मेरे दरदे जिगर वाली " याद हो तो सुनाइये।

यह सुनकर उसने अपने दहिने बैठे हुए सारंगिये से, जो उनके उस्ताद बोले जाते हैं, धीरे से कुछ कहा । इसके बादही उन दोनों ने सारंगी को छेड़ा । इधर बाई जी ने भी गाना शुरू किया।

"मोरे दरदे जिगरकी खबर ही नहीं, खबर ही नहीं कुछ असरही नहीं
नहींका।टेसे कटती है फुरकतकी रात, यारब! क्या इसकी सहरहीनहीं।
दिलको लगाकर क्या पाया गोहर, ऐसे सजरमें समरही नहीं॥मोरे०।

आखिरी मिसरे " मेरे दरदे जिगर " को उसने इस ढंग से बताया कि सचमुच मेरे आंखोंके सामने उसका नजारा घूम गया और मैं अवाक होकर उसका मुंह देखने लगा ।

अभी मैं कुछ सोंच ही रहा था कि ऐसा जान पड़ा जैसे कोई ऊपर आ रहा है । पैर की चांप मालूम होते ही तमाखू भरने वाला खिदमतगार उठकर गया और आनेवाले को ऊपर के कमरे में, जो मुझे पीछे से मालूम हुआ, बैठा आया ।

इतनी देरतक जब तक कि ये तमाशबीन नहीं आये थे, बाई जी धीर और स्थिर थीं परन्तु अब उनका दिल उड़ा हुआ दीख पड़ने लगा । झट गाना खतम करके उसने सारंगियों का मुंह देखा और धीरे से कहाः-" बस !"

यह सुनकर सारंगिये ने कहा, " बस न बाबू साहब !"

मैंने कहा,-" जैसी तुम्हारी मरजी ।"

तबला सारंगी झट् जमीन से टेक दिये गये । मैंने भी उसे अमीर जताने की गरज से दो की जगह उसे पांच रुपये दिये । उसनें भी रुपये पा बड़े नाजोअंदाज से सलाम किया । बादको मैं उठखड़ा हुआ । पीछे दोनों कलयुगी साथी भी खड़े हो गये और घर को चले आये ।

नवारंग ।

जिस प्रकार बाजार का नियम है कि जब कोई नयी फसल की नई चीज, कोई खेतिहर या बागबान पहिले पहल लाता है तो उस के बहुत से खरीदार दिखलाई पड़ने हैं,- ग्राहकों की इतनी तेजी हो जाती है कि उसके चारों तरफ भीड़ जमा होजाती है । और हर एक चाहता है कि, अगले खरीदार से भटके और मेरे फंदे में आ अँटके । इसी प्रकार जब कोई नथुनीबंद या नयी वाराङ्गना, जो जरा देखने में सुडौल तथा सुघर हो, खिड़की पर बैठती है तो कुछ दिनों तक उस काजल की कोठरी में जाने के लिए नये तथा पुराने सब तमाशबीन टूटे पड़ते हैं, हरएक चाहता है कि तमाम आनेवालों में मेरा रंग चौकाला रहे और जितने आते हैं सब फीके पड़ जांय । इस धुन में सब तमाशबीन दौड़ा करते हैं । इसी कारण किसी वक्त शामके बाद वाराङ्गना का कोठा तबला और सारंगियों की आवाज से अपूर्ण नहीं रहता, जब देखो तब एक बेवकूफ बैठाही रहता है । वाराङ्गना के घर का दरवाजा नहीं बल्कि वह निकल पैठका रास्ता हो जाता है । इधर एक के निकलते देर न हुई कि दूसरा जाता दिखलाई पड़ने लग जाता है ।

यही दशा आजकल 'नूरी' (यह उस लखनऊ वाली रंडी का नाम है) के यहां की भी हुई थी । जब मैं जाता तब एक न एक मुजरे को होता पाता । इधर पिताजी भी आये नहीं थे,

इससे मुझे डर तो था ही नहीं ! पर किसी कार्य में यदि कहीं देर होजाती, तो फिर वही ऊपर के कमरे में बैठकर इंतजारी करनी पड़ती।

मेरा दिल इस तरफ ऐसा उलझ गया था कि हटाये से नहीं हटता था। लाचार मैं सब कामों को छोड़ दींया जलते ही बाई जी के यहां जा पहुंचता और वह मुझे खूब उल्लू बनाती।

पचासी रुपये की बिसारत ही कितनी ! तिसपर ऐसे लम्पट साथियों का साथ ! चार ही पांच दिन में वह सब जाते रहे। जिस जगह दूसरे तमाशबीन का पांच खरचा होता उस जगह मैं दस खरचा करता। क्योंकि अब मैं पहिले से कम दे भी नहीं सकता था। क्योंकि हर वक्त दिल में यही ख्याल लगा रहता कि कहीं ऐसा न हो कि बाईजी दिल में मुझे कंजूस कह बैठें। उधर वह भी अच्छा बेवकूफ फंसा देखकर रोज एक न एक फरमाइश लगाये रहती। बेवकूफों का कौल है कि "जब तक तमाशबीन फरमाइश पूरी कर न ले जावै तब तक वह रंडी की नजर से गिरा रहता है।" इसी गिरने के भय से मुझे उसी डाकू महाजन से कईबार रुपये लेने और दूने रकमकी रसीद लिखनी पड़ी। इधर रुपया आता और उधर बाईजी के भुस में चला जाता। पहिले की अपेक्षा मुझसे अब वह बहुत हिल मिल गई थी, नाइका भी बड़े आब व ताब से सलाम करती, बैठाती और खैरोआफीयत पूछती। इसमें संदेह करने की बात ही क्या है। आज कल का जमाना तो रुपये का है, जिसके सिर पर चांदी की जूती लगाइये वही खुशामद करने लग जाता। फिर वह तो भला रंडी ही थी, वह क्यों न खुशामद करती ? क्यों न आदर भाव से बैठाकर खैरोआफीयत पूछती। तिसपर उनकी ऐसी प्रकृति ही होती है, कि जो दिन के अंधे आवैं उनसे नकली प्रेम, झूठी मुहब्बत और इस प्रकार के हावभाव दिखाकर कि वह(रंडी)उसपर आशिक ही है। उसको (तमा-

बीन को)लूटना ही उनका प्रधान कर्तव्य है। मैं भी उसके हावभाव को देखकर मनही मन सोंचता कि हाँ वह मुझे चाहती है, पर अपनी नायिका के डरसे कुछ जाहिर नहीं कर सकती है। इसी लालच से मैं भी उसके साथ जहां जहां वह जाती, छिपे तार से जाता और प्रेम बढ़ाने की फिक्र में लगा रहता। पर उसे सच्चा प्रेम कहां? जो कुछ था वह उसका भड़म्मा था। रास्ते में उसके यहां के दूसरे आने वाले भी जबकभी मिलजाते तो वह उनके साथ भी मेरे ही समान मिलती। पर मैं तो उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था। भला मुझे यह बात कैसे सूझती?

इधर आठ दस दिन तो खूब अच्छी तरह से कटे। पर जिस दिन से पिता जी घरको आये उस दिन से इधर बड़ी सावधानी से काम करना और रहना पड़ने लगा। इससे प्रायः जानेमें देर होजाती और वहां दूसरे तमाशबीन बैठे पाये जाते। निदान एक दिन जब मैं वहां पहुंचा तो उस समय वहां मुजरा हो रहा था। इससे मुझे ऊपर चलना पड़ा। मेरी तो इच्छा हुई कि मैं वैरंग वापस चला आऊं पर खुद उसकी नायिका उठकर मेरे पास आई और बोली:-

"आइये ऊपर चलकर बैठिये इनको अभी धता बताती हूं।"

निदान, मैं इसका कुछ उत्तर न दे सका और चुपचाप ऊपर कोठे पर जा बैठा। खिदमतगार आया, पैसे दिये गये, पान पत्ते आये। मैंने खाया और नायिका तथा दोस्तों को खिलाया। फिर मेरे साथी छबीले ने इधर उधर की गप्प छेड़ी। बात ही बात के सिलसिले में बाईजी की नायिका ने कहा:-" क्या कहें नवाबी ज़माना जाता रहा नहीं तो झरोखे की झंकाई पांच सौ लेते।" क्या कहें अब के तमाशबीन बड़े चालाक होते हैं। एक तमाशबीन (मुझे लक्षकरके) मेरी बच्ची को आप ही की तरह चाहता था। उसने सैकड़ों का कपड़ा मंगाया, यहां के हरेक आदमियों को

नये नये जोड़े दिये । पर अफसोस सिरढंपाई में कुल पांच सौ देने लगे ।

इसके बांद फिर दूसरी रंडियों की बात चली और उसी बात के सिलसिले में नायिका ने कहाः–" हम लोगों का पेशा ऐसा बुरा है कि हरेक रुपया देने वाले से मुहब्बत जतानी पड़ती है। अफसोस कि तमाशबीनों के वालदैन (मां बाप) ऐसे कंजूस होते हैं कि अपनी औलादों की मुहब्बत का जरा भी ख्याल नहीं करते । इस से बिचारों को चोरी करनी पड़ती है । उन बिचारों का क्या कुसूर ! जब उन्हें नहीं मिलता है तो वे अपनी औरतों के जेवरात बेंच डालते हैं। हरवक्त रुपये की धुन उन्हें सताये रहती है । इन बिचारों का भी इसमें कोई कुसूर नहीं है । अगर वे किसी तरह से रुपया लाकर अपनी माशूका को न दें तो वे राजी न हों क्योंकि रंडियां तो रुपये की आशिक होती हैं जो उनको सबसे ज्यादः रुपया दे उसी को वे चाहती हैं । "

इसी प्रकार उसने बहुत सी बढ़ावे की बातें और कहानियां कह सुनाई। फिर जब मैंने पूछा कि आपको मालूम है कि मालती के यहां जो लड़ाई हुई थी उसका असली सबब क्या था । तो उसने कहना प्रारम्भ किया कि हमको तो बाजार का रत्ती २ हाल मालूम हो जाता है । मैंने कहा क्यों न मालूम हो जाता होगा । आप सारा जमाना देखे बैठी हैं । फिर उसने यों कहना शुरू किया कि,–जो देखने में सीधा सादा मालूम होता था उसका नाम भोलानाथ है यहां के एक महाजन का वह लड़का है । वह और एक तमाशबीन बहुत दिनों से मालती के यहां आते जाते थे । एक दिन भोलानाथ बैठा हुआ मुजरा सुन रहा था कि वह दूसरा तमाशबीन भी आ पहुंचा । उसके साथ एक वही बदमाश भी था जिससे उसकी (भोलानाथ की) मार पीट हो रही थी । मालती जब

गाना खतम कर चुकी तो उसने भोलानाथ से इजाजत मांगी कि अगर आप इजाजत दें तो उनको भी बुलाया जावै। पर इसने कहा कि नहीं अभी हम और सुनेंगे! लाचार फिर दूसरा मुजरा होने लगा। उसके (मुंजरे के) खतम होनेपर जब मालती ने फिर पूछा तो उसने कहा नहीं अभी एक और होने दो। वह बिचारी बड़े पशोपेश में पड़ी। उसे दोनों का मुंह सम्हालना था उसने माफी चाही तो भोलानाथ बिगड़ उठा कि क्या हमारा रुपया नहीं है क्या दूसरे के रुपये में सोना और हमारे में मिट्टी लगा हुआ है। मतलब यह कि इसी तरह लागा डांटी में उसने अकेले पांच मुजरे सुने। यहां तक कि इसी में बारह बज गये। लाचार हो झुंझलाकर वह दूसरा तमाशबीन यह कहता हुआ कि "समझ लेंगे" उठा और चला गया। दूसरे दिन फिर जब भोलानाथ उसके यहां इसी तनाव की वजह से सरे शामही आबैठा और गाना सुनने लगा। तो उस दूसरे तमाशबीन के साथवाले बदमाश ने आकर कोठे ही पर मारपीट करनी शुरू कर दी।"

मैंने पूछाः—"उस बदमाश का सिर कैसे फटा हुआ था।"

नायि०। सच्ची हाल तो खुदा जाने। पर० सुनने में आता है कि जब वह भोलानाथ को मारकर तेजी से भागने लगा है तब दीवाल से उसकी टक्कर होगई और उसका सिर भी खुल गया।

मैंनेपूछाः—"पर मालती ने तो थाने में बड़ी बेवफाई दिखलाई और ऐसी बात करने लगी कि मानों कभी की जान पहिचान नहीं है।"

नायि०। क्या करे। इतना करने पर भी बिचारी के पिंड नहीं छूटे। आपतो पुलिसवालों से खूब वाकिफ हैं। उन्हें जरा भी हाल मिल जाना चाहिये। आपही बतलाइये इसमें उसका क्या कुसूर था। उसने किसीको लड़ने को कहा

नहीं था, किसी को लड़ाया नहीं फिर भी सुनने में आता है कि उसके बीस रुपये लग गये।

मेरे साथी छबीले ने कहा:-" हां भई लग गये होंगे।

इसके बाद रंगीले ने फिर रंडियों यानी खास नथुनीबंदों की बात छेड़दी और उसने बातही बातों में मेरी तरफ इशारा कर कहा:-" क्या कभी बाबू साहब की भी गोशमाली होगी। "

नायि०। छिः छिः ऐसी बात न कहिये। मैं तो इन की जूती हूं। मेरी क्या मजाल! ....

अभी वह इतनी ही बात कहने पाई थी कि नूरी भी आ पहुंची। उसे देखते ही मेरा दिल बाग़ बाग़ होगया। साथियोंने कुछ छेड़ छाड भी की। पर मारे शर्म के नायिका के आगे मुझसे कुछ कहते न बना। मैं चुपचाप बैठा हंसता रहा। मैंने देखा कि जितना ही रंगीले व छबीले उससे छेड़छाड़ करते हैं उतना ही वह अपना नखरा और नाजुकपन तथा अदाओं को बढ़ाती जाती है।

मुझे कुछ बोलते न देखकर मौका देने की गरज से नायिका नीचे चली गई। तब शर्म ने भी मेरा कुछ पीछा छोड़ा और मैंने नूरी की तरफ खसककर कहा:-"जान! एक बोशा तो इनायत करो।"

उसने भौं तान और नाक सिकोड़ नखरे से कहा:—" क्या मुफ्त का है। "

अभी मैं कुछ कहना चाहता था कि वहां का चिलमभरवा आया और बोला:—" चलिये बाबू साहब! नीचे चलिये। बड़ी बी बुला रही हैं। "

यह सुनतेही 'नूरी' उठी और नाजो अदा दिखलाती हुई नीचे चली गई। यह देखकर पहिले तो मुझे बड़ा क्रोध मालूम हुआ। पर फिर यह समझ कर कि क्या करे वह लाचार है, शांत हो रहा। वास्तवमें यह बात कहीं कहीं से सच भी सिद्ध हो चुकी है। पाठक

यह न समझें कि नायिका अपनी नौचियों को योहीं छोड़ देती है वरन् उन्हें जानना चाहिये कि ऊपर से तो वे उनकी हरएक तरह से खातिर भाव करती हैं पर भीतर की नजर से उन्हें दुश्मन से भी बढ़कर देखती हैं। जहां कहीं उसने किसी आनेवाले से सच्चा प्रेम दिखलाया तहां वह आग बबूला हो जाती हैं और उसके चलेजाने पर छड़ियों, पंखों, हुक्के की नलियों और कभी कभी बेंतों (या जो कुछ आगे मिल गया) से उनकी खबर ले झूठी मुहब्बत बतलाने की तालीम देती हैं। एक तो नाग का बच्चा नाग,—दूसरे उसे डंसने की तरगीब! फिर आपही समझ सकते हैं कि वही कालानाग पलकर जवानी में ऐसा होजाता है कि जिसके डसने से तमाशबीनों को लहर तक नहीं आतो। नायिकायें अपनी जान में, नौचियोंको काबू में रखने के लिये कोई बात उठा नहीं रखतीं। वे उन्हें पढ़ना सिखलाती हैं, पर लिखना बहुत कम,—जोकि बिलकुल नहीं के बराबर क्या, उससे भी गया गुजरा होता है। वे उनपर सख्त निगाह रखती हैं। यही कारण है कि जहां जहां नौची जायगी वहां वहां नायिका भी जरूर जायगी।

अतएव मैं भी बैठके में आया। सफरदा तैयारही थे मुजरा होने लगा। उसके खतम होने पर जब पान पत्ते की खवाई शुरु हुई तो छबीले ने इशारे से फिर "नूरी की नत्थ" के बारे में बातचीत छेड़ दी। सच है, मनुष्य का दिल अथाह और इसकी लालसायें अनगिनती हैं, जितना इसको रास्ता मिलेगा उतनाही यह बढ़ता चला जायगा। कहां तो मुझे पहिले इस तरफ से कुछ शौकही नहीं था, कहां आज नत्थ की सूझी! पाठक, जरा सोचिये, दोनों बातों में कितना फर्क है?

छबीले ने पूछाः—"फिर आपने कुछ कहा नहीं?"

नायि०। (बड़े तपाक से) जो जो बातें थीं सब आपको

बतलाही दिया। मेरी राय तो तीन सुन्ने ००० से कम की नहीं है (ऐसे ढंग से मानो कोई चीज कही ही नहीं गई) अह! आप जैसे रईसों के लिये यह कौन बड़ी बात है, साल में इतने के तो पान पत्ते उड़ जाते होंगे।

तीन सुन्ने की बात सुन मेरे हवाश जाते रहे। एक मिनट के लिये सनसनी सी दौड़ गई। सोंचने लगा, हजार रुपये! ओफ हजार रुपये! तिसपर "कौन बड़ी बात है!"

अभी मैं बिचारों की उलझन में फंसा ही हुआ था कि नायिका में मुंह से ये शब्द निकलते सुन पड़ेः—"अभी मेरी नूरी की उम्र ही कितनी है। कुल जमा बारह बर्ष! अफसोस की नवाबी जमाना न रहा।"

मुझे तो कुछ कहने की हिम्मत न हुई। पर मैंने रंगीले के कान में कहा, पूछो कि इतनाही या कुछ कम!"

यह सुन वह बोलाः—"आप तो भगाने की बात कर रही हैं!

नायि०। नहीं जनाब! अफसोस कि शाहीवक्त न रहे!!!

छबी०। मालूम होता है कि आपके सिरमें दिन रात शाही बक्त चक्कर दिया करता है। कहिये कुछ कम भी।

यह कह उसने हाथ बढ़ा नायिका की पांचो अंगुलियों को पकड़ लिया। उसने अपना हाथ छुड़ाते हुए ऐसे ढंग और तपाक से मानो कभी की जान ही पहिचान नहीं है, कहाः—"नहीं साहब,—यह सौदा तो है नहीं कि इसमें कमी बेश हो। अगर आप उससे एक कौड़ी भी कम कहेंगे तो मैं मंजूर नहीं कर सकती।"

यह सुनकर मेरा दिल टूट गया। एकाएक जो मेरी नजर लगी हुई घड़ी की तरफ गयी तो देखा,—बारह बजनेवाले थे। पिता के भय से हृदय भयातुर हो उठा। फिर उदास दिल से "नूरी" से यह कहते हुए कि "जाते हैं" मैं बिना सलाम लिये ही उठा और

साथियों को घरजाने के लिये कह सीधे घर आया। ज्योहीं दरवाजे के भीतर लात रक्खा है त्योहीं धर्म घड़ी ने टना टन दस की घंटी बजाई। अभी उसकी आवाज खतम भी न होने पाई थी कि लेटे हुए पिता जी उठ बैठे और गरजकर बोलेः– "इतनी रात तक कहां रहा नालायक बदजात !"

जब वे बहुत बिगड़ने और भला बुरा सुनाने लगे तो मैंने एक मंसूबा गंठ कहाः–" आप तो बेफायदा ही इतना बिगड़े जाते हैं अमुक स्थान से अमुक रईस (क्योंकि मैं अपने पाठकों को उनका नाम नहीं सुनाना चाहता) आये हुऐ थे। उनसे रास्ते में मुलाकात हो गई इससे मैं उनके साथ बाग में चला गया था।

पिता जी ने कहाः–" बदमाश आवारा ! तेरी चालचलन को मैं अच्छी तरह जान गया हूं। हमीं से छिपाने चला है। तुझे तो मैंने नौ ही बजे तक लौट आने को न कहा है ?

मैं,–इसमें मेरा क्या दोष है। मैं तो जाता नहीं था पर जबर्दस्ती वे साथ लिवा ले गये।

पिता०। तूं झूठा है। किसी रंडी के यहां रहा होगा। अब बातैं बनाने चला है।

मैं,-आपको तो मेरी बातों का विश्वास नहीं पड़ता।

पिता०। कहीं चोरों छिनारों का भी विश्वास किया जाता है।

चोर की बात सुनकर कलेजा धक से हो गया। उस बात को दबाने की गरज और अपने को सच्चा साबित करने के लिये मैं आंसु बहाने लगा। थोड़ी देर चुप रहकर मैं झूठही मूठ बात बनाकर बोलाः–" जब देखते हैं तब आप मुझपर बिगड़ते ही रहते हैं। सच्चा झूठा तो तभी मालूम हो सकता है जब जांच की जाय। अगर आपको मेरी बातों का बिश्वास न हो तो चलके दरयाफ्त कर लीजिये।

पिता० । क्या तू चलकर पूछ सकता है ?

मैंने झूठ ही मूंठ तपाक बदलकर कहाः–" सच्चे को आंच क्या ? " अभी चलिये या किसी और को साथ भेजिये । तभी तो सच्चे झूठ की बात जाहिर हो जायगी और रोजका टंटा टूट जायगा।"

मेरे इस जोशीले जवाब से पिता जी कुछ सहम से गये। चाहे आगे के लिये न रहा हो पर थोड़ी देर के लिये झूठ ने अपना कौशल दिखला दिया । पिता जी चुपचाप सो रहे । मैं भी अपने कमरे में चला गया। खाना पीना तो रास्ते ही में और बाई जी के यहां ही हो गया था । इससे जब विचारी साध्वी स्त्री भोजन के लिये आग्रह करने लगी तो मैंने उस बेकुसूर को ऐसी डांट बताई कि विचारी रोने लगी । हाय ! जब मैं उस सती की बातें सोंचता हूं तो मेरी छाती फट जाती है ।

दसवां रंग ।

निदान मैं उस बिचारी को डांट बतलाने के कारण मनही मन पछताता हुआ बिस्तरे पर लेटा । नीन्द ने मुझे दुचित्त जानकर भी हमलाकर सुला दिया । स्वप्न में भी मुझे " नूरी " की लीला दिखलाई पड़ती रही । सबेरा हुआ, आंखें खुलीं, अभी मैं बिस्तरे ही पर था कि हजार रुपये के ख्याल ने आ दबोचा। मैं बड़ी देरतक सोंचता बिचारता रहा पर कुछ भी समझ में न आया कि रुपया कहां से आवेगा । आखिर में मेरी धर्म्मपत्नी ने आ मेरे उस बिचार का सिलसिला तोड़ा और पुकारकर कहा कि घड़ी में आठ बजगये ।

यह सुनते ही मैं झट से उठ बैठा और नित्य कर्म से छुट्टी पा, दुकान पर गया । दस मिनट तक वहां बैठा रहा, पर चित्त न लगने से नई सड़क के बैठके में जा अपने मित्रों से मिला । वहां

पहुँचना था कि कल रात की बातें छिड़ गई। मैंने कहाः-" यार बुढ़िया ने तो कल बड़ी बेरुखी दिखलाई।"

रँगीले ने कहाः—" उसे अपनी चीज का बड़ा घमंड है" अगर इंसाफ से पूछो तो माल भी करारा ही है। क्या गुलाब के फूल की पंखडियों से कपोल हैं, कैसा नाजुक और मुलायम हाथ पैर है: बिलकुल सिर से पैर तक एक साँ है। सच पूछो तो उसकी शक्लसूरत बिलकुल शाहजादियों के समान है।

छबीले ने जरा रुखियाकर कहाः-" सब कुछ तो है पर धीरे धीरे करके हजार के नजदीक पहुंचा दिया होगा। इधर उधर पांच सौ से ज्यादा तपा नहीं गया होगा। दरहकीकत में बाजवक्त उसकी हरकतों से तबीयत ऐसी बिगड़ जाती है कि उधर थूकने को जी नहीं चाहता, पर अफसोस यह दिल..............

मैंने बात काटकर कहाः-" हां भई साहब! तबीयत रात से सख्त बेचैन है। कभी तो उनकी बातों से दिलको इतना सदमा पहुंचता है कि उधर जाने की जरा भी रुची नहीं होती पर नूरी की नूरानी सूरत बिना इधर दिल भी नहीं मानता,-कहीं तबीयत नहीं लगती। जब उसके हजार रुपये की बातों को सोंचता हूं तो नाउम्मेदी से दिल टूट भी जाता है।

छैलबि०। हां एक खबर तो भूल ही गये थे। पियरी के महाजन ने कहलवा दिया है कि अब मैं इससे ज्यादा नहीं दे सकता। उनके लिये दो हजार काफी है।

रँगी०। लो और भी सुनो। अभी कुल जमा उन्होंने फुटकर फुटकर एक हजार दिये हैं। जिसकी दो हजार की रसीद लिखा ही चुके हैं। फिर उनको क्यों घबराना चाहिये।

छबी०। छिः न अभी पांच हुए न दस। वाह, क्या उनका रुपया मारा जा सकता है।

रंगी०। कोई चिंता की बात नहीं। हम देख लेंगे। उनके ऐसे ऐसे अनेकों महाजन पड़े हैं। वे न सही और सही। क्या देनदारों के लिये महाजनों की कमी है।

मेरे लम्पट साथी लोग खूब मनमानी खिचड़ी पका रहे थे। मैं भी सुनता सुनता घबरा कर उठ आया। हजार का कहीं बन्दोबस्त लगता ही नहीं था कि मैं लेकर जाता। इसी में कई दिन बीत गये। घर या दुकान से दस पांच जो हाथ लगता वह दोस्त यारों ही में उड़ जाता। और ज्योंहीं उनलोगों का साथ छूटता त्योंहीं फिर मेरे दिल पर उदासी छा जाती।

मेरी ऐसी दशा शायद आठ दस दिन तक रही होगी। इस बीचमें उधर नूरी की नायिका के पेट में भी सांप लोटने लगा। क्यों न लोटता? इस जमाने में कर्ताधर्ता जो कुछ है वह रुपया ही है। आठ दस रुपये जो उसे बिला हर्रा फिटकरी के मिल जाते थे इस आठ दिनों में न मिले। पहिले तो उसने सोंचा फंदे से जा कहां सकता है, झख पटककर एक दो दिन में आवेहीगा। वास्तव में मैं उसके फंदे ही में फंसा था। पर लाचारी यही थी कि रकम भारी थी इससे उसका कहीं से न बन्दोबस्त लगता और न मैं जाता था। पर जब धीरे धीरे करके आठ दस दिन बीत गये तो फिर उसके यमदूत छूटे। एक दिन जब कि मैं अपने बैठके में बैठा था एक सारंगिया जो शायद उसके दाहिने या बांये बजाता था मेरे पास आया और सलाम करके बैठ गया।

थोड़ी देरतक चुपचाप बैठे रहने क बाद उसने रंडियों की बात छेड़ी और कहाः—"इधर कई दिनों से आप आये नहीं, क्या कहीं बाहर गये हुए थे?"

मैंने भी अनजान बनकर कहाः—"नहीं मैं बाहर तो गया नहीं था। हां तुम कहा के आने की बात कहते हो।"

सारं० । जान पड़ता है आप मुझे पहिचान नहीं सके ।

मैं,-नहीं भाई । बात तो सचमुच में यही है ।

वह अभी कुछ उत्तर देने ही वाला था कि रंगीले बोल उठाः-" यह तो आपकी माशूका के यहां सारंगी न बजाते हैं । "

मैं,-(जरा आश्चर्य दिखाकर) मेरी माशूका कौन ?

सारं० । वही नूरी !

मैं,-वह भला मेरी माशूका क्यों होने लगी ?

सारं० । वाह साहब ! आप भी खूब कहते हैं । बिचारी ने आज तीन दिन से दाना नहीं खाया है;-मारे रंज के खिड़की पर नहीं बैठती । इसी लिये बड़ी बी और उनमें कभी कभी दो दो चोंच हो भी जाती है ।

मैंने झूठही मूठ कहाः-" वाह अभी तो उसदिन बैठी हुई थी।"

सारं० । नहीं साहब ! आपको धोका हुआ होगा । मुमकिन है बड़ी बी ने जबर्दस्ती बैठा दिया हो। चलिये अब आपको याद किया है ।

मैं अभी कुछ कहना चाहता था कि " अच्छा आज शामको आवेंगे । " छबीले का यह जवाब सुन सारंगिये ने सलामकर रस्ता लिया और मेरे दिल की बात मेरे दिलही में रह गई । सचमुच में, मेरा दिल तो पहिले ही से न लगता था पर आज सफरदाकी बात सुन वह और भी उड़ गया । निदान शाम होते होते इधर जोड़ तोड़ लगाकर मैंने दस रुपये एकत्र किये । ज्योंहीं चिराग में बत्ती पड़ी त्योंहीं मैं भी कोठे पर जा पहुंचा । आज समझ पड़ता है कि उस दिन जाल को, दोनों ने फिर नये सिर से बिछाया था । मेरे पहुंचते ही नायिका और नौची ने उठ उठ कर सलाम किया । नायिका की सिखाई नौची ने मुझे हाथ पकड़ अपने पास बैठाया । फिर झूठही रोअंइदा मुंह बना उसने अपना कान खुजलाया, रूमाल *

* रोने के लिये प्रायः रंडिया कान में लाइची का फाहा रक्खे रहती

को आंखों से लगा दिया । सचमुच में उसके आंखों से आंसु बहने लगे ! इस समय नायिका ने भी अपना मुंह उस तरफ फेर लिया मानो वह इस तरफ देखती ही नहीं है ।

यदि कोई पाठक उस समय के मेरे दिल का हाल जानना चाहता हो तो उसके निमित्त इतनाही कहना काफी है कि जिस समय उसने अपना हाथ मेरे हाथ में मिलाया उस समय मेरी सारी सुध बुध जाती रही और मैंने समझा कि मेरे पित्र आज तर गये । और अब मैं अप्सरा के साथ परिस्तान में आनन्द लूटने जा रहा हूं

उसने सिसकते हुए कहाः–" प्यारे ! मैं तुम्हारे बिना अब एक घड़ी भी नहीं रह सकती । जान पड़ता है तुम्हारी जादूभरी आंखों ने मुझे अपने वश में कर लिया है । "

ज्यों ज्यों वह इसी प्रकार की बातें करती त्यों त्यों मैं फूला अंग न समाता । आखिर में मैंने कहाः–" मुहब्बत में तो रुपये का काम नहीं । क्योंकि मुहब्बत और रुपये में सख्त दुश्मनी है । मुहब्बत होती तो फिर — —

अभी मैं इतना ही कहने पाया था कि नायिका की नजर इस (मेरी) तरफ को फिरी । उसने कहाः–" फिर तो बाबू साहब हम लोग खांय क्या ? "

मैं,–क्या पांच सौ कम था ?

नायि० । क्या करें अफसोस है कि नूरी आप पर शैदा हो गई है नहीं तो मैं १००० रुपये से कम न लेती ।

रंगी० । अरे बाईजी, घबराती क्यों हो । एक हजार नहीं बल्कि दस हजार लो । आप जानती हैं कि तमाशबीन को मांगने पर एक कौड़ी देना बुरा मालूम होता है, पर वह खुशी

हैं । मौका आने पर वे उसीको कौशल से आंखों में लगा देती हैं जिससे अश्रुधारा बहने लग जाती है । लेखक ।

से अपनी सारी सम्पति भी दे दे तो उसे ज़रा भी नहीं जान पड़ता ।

आज भी नायिका की बातें मुझे रूखी जान पड़ीं । पर जब जब मैं कुछ कहने चलता तब तब नूरी मेरा मुंह बंद करदेती, कभी इशारे से मना कर देती और कभी नायिका को कुछ कह चुप करा देती मतलब यह कि उसने मुझे अपने चंगुल से निकलने न दिया । मैं इधर प्रेम में थगा रहा । उधर रंगीले और नायिका में बहुत देरतक धीरे धीरे, क्योंकि वह भी उसके पासही चला गया था, बातें होती रहीं । आखिर में वह, जब कि घड़ी में ग्यारह बजने वाले थे, खसककर मेरे पास आया और बोला:—"लो खुश होओ कि मैंने पांचही सौ पर ठीक कर दिया ।"

रुपये का जिक्र सुन, यद्यपि मेरा दिल उदास हो गया क्योंकि, कहीं से कुछ मिलने की आशा न थी। पर मैंने उस भाव को छिपाकर कहा:–"ऐन मेहरबानी है ।"

इस के बाद बाईजी ने बड़े नाज़ो नखरे के साथ मुजरे का प्रसङ्ग छेड़ा और मैंने कहा: —"इस में मुझे कोई उज्र नहीं है पर (घड़ी की तरफ इशारा कर के) देखो बारह बजने वाले हैं बड़ी देर हो रही है ।

यह कह मैं उठने चला कि नूरी ने हाथ पड़क लिया। लाचार मैंने बैठकर धीरे से पांच रुपये निकाल कर उसके हाथ पर रख दिये और उठखड़ा हुआ । मेरे उठते वह सारंगिया भी उठकर मेरे पास आया और बोला:—

"बाबू साहब ! गुलाम को भी कुछ ईनाम मिलना चाहिये।"

छबी० । हां ठीक ! उसमें से तुम्हें तो एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी।

सारं० । यह तो आप को मालूमही है । देखिये चारों आदमियों को इतनी रात हो गई । अगर पहिले मालूम होता तो और कहीं देखते ।

निदान अपनी शेखी जताने की गरज से उस सारंगिये को भी दो रुपये हवाले कर मैं नीचे आया। थोड़ी दूर चलकर रात ज्यादा होने से छबीले और रंगीले अपने अपने घरों की तरफ चल गये। मैं भी एक गली से, जो सन्नांटी होगई थी घर की तरफ मुड़ा और तेजी से चला जा रहा था कि सहसा पीछे से कई आदमियों ने आक्रमण द्वारा मुझे बेहोश कर गिरा दिया।

ग्यारवां रंग

मैं पहिले लिख आया हूं कि मेरे पिता एक प्रवीन व्यवसायी थ, उन्होंने व्यापार में विलक्षण उन्नति कर के "व्यापारे बसते लक्ष्मीः।" को सिद्ध कर दिया था। वे बराबर विलायती कम्पनियों से बेचने का कनट्रक्टकर ऐसी ऐसी चीजें मंगाते और बेंचते थे जो हिन्दुस्तान में कहीं न मिलती और न बनती थीं। यद्यापि इनके कई एक प्रतिद्वन्द्धि थे किंतु कोई भी इनके सामने नहीं आ सकता था कारण कि ये लाख लाख पचास पचास हजार का माल एकट्ठा मंगा लेते थे और उसे बाजार में कम्पनी के भाव बेंचते थे, इस से कोई भी प्रतिद्वंद्धि सामने न टिक सकता था। यह कहना तो बिलकुल अनुचित और अन्याय होगा कि प्रतिद्वद्धियों का माल बिलकुलही नहीं बिकता था ताहम इतनी बात तो जरूर थी कि जबतक मेरी दुकान पर लाख के माल का वारा न्यारा होता था तब तक वे दस हजार का भी न बेंच सकते थे। इसके अतिरिक्त उनके (पिताजी) नाम की देश और विदेश में इतनी प्रसिद्धि हो गई थी कि कोई एकट्ठा रुपया न मांगता वरन सब को माहवारी किश्त (Monthly payment) के हिसाब से रुपये दिये जाते थे।

इन दिनों एक विलायती कम्पनी से, जिसका कारबार कुछ ढीला पड़ गया था एक मुश्त चालिस हजार का सौदा हुआ और

यह शर्त तय पाई कि हर पन्द्रहवें दिन बराबर ५००) भेजते जाया करेंगे। पहिले तो कम्पनी वाले इस बात पर राजी ही नहीं होते थे क्योंकि उन्हें रुपये की बड़ी जरूरत थी। पर बहुतसी लिखा पढ़ी के उपरान्त यही बात निश्चय पाई और उपरोक्त शर्त मंजूर कर कम्पनी वाले ने यह भी लिखा लिया कि कभी एक दिन की भी देर हो जायगी तो सब रुपया एकट्ठा दावा कर वसूल कर लिया जावेगा। अस्तु,

कम्पनी का माल आ गया और पिताजी किये हुए प्रतिज्ञा अनुसार दनादन माल बेंच बेंच कर हर पन्द्रहवें दिन धड़ाधड़ उस कम्पनी को रुपया भेजने लगे।

आप लोग ऊपर पढ़ी चुके हैं कि इन दिनों मुझे रुपये का कहीं से बन्दोबस्त न लगता था। भला पहिले तो यह बहाना था कि 'हजार' चाहिये किंतु कल अभी अभी आप देख चुके हैं कि ५००) पर बात पक्की हो गई है। एक तो मैं पहिलेही से 'नूरी' पर शैदा हो रहा था और उसके लिये सब कुछ करने को तैयार था। पर अब वह भी मेरी बात पर राजी हो गई। फिर भला मैं कैसे स्थिर रह सकता था। जिस समय से मैं उसके यहां से पांच सौ पर बात ठीक कर आया। उस समय से मैं रुपये के लिये मतवाला हो रहा था,—बल्कि ऐसा कहिये कि, मुझपर जिन्न सवार हो गया था और मैं बिलकुल अपने हवाश से बाहर हो, पागल बन गया था।

पहिले तो मैंने इधर उधर बहुत हाथ पैर मारा, कितने महाजनों, दोस्तों, यारों से रुपये तलब किये पर जब कहीं से कुछ बन्दोबस्त न लगा तो बगुला की तरह अपनी दुकान पर घात लगा बैठा।

मेरी हालत से आप को पहिले ही मालूम हो गया होगा कि

इस समय मुझ में जरा भी सुध बुध तथा होश हवाश न था जिससे मैं आगा पीछा सोच अपना भला बुरा मालूम कर सकता।

धीरे धीरे करके महीना खतम के निकट आया,-महीने में सिर्फ तीनही चार दिन बाकी रह गये थे। उधर बात ठीक किये भी आठ दिन हो गये जिससे मेरी तबियत बहुत घबराने लगी। इधर पिताजी भी एक मुकदमें में फंसे रहने और फुरसत न मिलने के कारण मुनीम को पांच सौ का एक नोट दे उसे भेजने के लिये आज्ञा दे दी। मुनीम ने पिताजी के सामने ही रजिस्टर कवर (मोटा लिफाफा जो दो आने को मिलता है) में उसे रख और मुहर कर उन्हें दिखाया और उन्हों ने भी बहुत ही ठीक कह उसपर पता लिखा दिया। इतने ही में कोचवान गाड़ी ले आ खड़ा हुआ और पिता जी उसपर सवार हो कचहरी को चले गये। इधर काम में फंसजाने के कारण मुनीम ने उठकर उसे केशबक्स में बंद कर ताली हाथ में ले गाहकों से बात करना और सौदा बेंचना प्रारम्भ किया।

कुसंयोग से उस समय इतने ग्राहक भी आ गये कि मुनीम को जान छुड़ाते छुड़ाते आफत पड़ी। बड़ी मुशकिलोंसे कइयों को शाम के लिये बुला तथा कइयों को सौदा दे टाल, एक बजे के लगभग वे भोजन करने चले गये। और जल्दी में केशबक्स की ताली को वहीं भूल गये। (आप लोगों को मालूम होगा कि इस शहर के व्यवसायी लोग बारह बजते बजते भूख के मारे व्याकुल हो जाते हैं) इधर धीरे धीरे करके सब आदमी चले गये। और दुकान पर केवल एक आदमी और मैं रह गया।

जिस प्रकार बगुला की निगाह से मछली नहीं चूकती इसी प्रकार मेरी निगाह से वह ताली नहीं भूली। जब सब आदमी चले गये तो मैंने उस नौकर को कुछ पैसे दे कुछ सौदा मंगाने के लिये भेजा। जब वह भी चला गया और दुकान में कोई न रहा

तो मैंने ताला खोल केशबक्स से वह रजिस्टरी निकाल उसे अपनी जेब के हवाले किया और जल्दी जल्दी उनी बक्स से वैसाही एक लिफाफा निकाल, उस पर अंग्रेजी में बिलकुल वही सिरनामा लिख थोड़ी रद्दी कागज उसके भीतर डाल वैसाहीं लाह और मुहर से सिल कर ज्यों का त्यों बना वहीं, जहां वह रक्खा हुआ था,—उसे रख दिया।

यद्यपि मेरा कलेजा धक् धक् कर रहा था तथापि यह काम मैंने दम की दम में कर डाला। उधर वह नौकर सौदा लेकर आया और मैं भी भोजन कर मनहीमन हंसता,—ताली को जहां की तहां छोड़ नूरी की सिरढंपाई देने के लिये चल पड़ा।

संयोग वा कुसंयोग से उस दिन मुनीम साहब भी उस समय आये जब कि घड़ी में साढ़े तीन बज रहे थे। आतेंही उन्होंने ताली पा खुश हो बक्स और उसमें की सब चीजों को ज्यों की त्यों देखा और रजिस्टरी चीठी की सिल (मुहर) इत्यादि को जांचकर उसे जल्दी से डाकखाने में लगाने के लिये भेज दिया। नौकर भी दौड़ा हुआ गया और उसे डाकखाने में लगा, रसीद ला मुनीम के हावाले किया।

जिस समय कि मैं दुकान से नूरी के यहां चला। उस समय पास में केवल वही रजिस्टरी तथा दो रुपये और कुछ पैसे थे। मैंने अपने दिल में कहा कि यदि मैं बैठके में जाऊंगा तो और खर्चे में पड़ूंगा इससे आज अकेले चलना चाहिये। मैं चलता और इन्हीं सब बातों को सोंचता जाता था कि इतने में नूरी का मकान सामने आ गया। फिर तो दिलमें इतनी ताब कहां जो अपने को रोक सकता। झट मैं भीतर घुस गया। अंगनेका दरवाजा भेंड़ा हुआ था जो हाथ रखतेही खुलगया। ज्योंहीं दरवाजा खुला है त्योंही "कौन है" कह वहां का चिलमभरुवा नौकर सामने आ खड़ा हुआ

मुझे देखते ही सलाम कर वह कहनेलगा:-"लाला ओला सूत गयल हंइन और कहले हंइन कि कोई न आवे पावे।

मैं,-काहे का भयल हौ।

नौ०। न जाने काहे।

मैं,-का कोई आयल हौ का!

यह सुनकर वह पशोपेश में पड़ गया। इधर,-ऊपर का हाल जानने के लिये मेरे दिल में चूहे कूदने लगे। साथ ही क्रोध ने भी आ दबाया,-पर मैं ऊपर कैसे जाता वह यमदूत की तरह सामने खड़ा था कि इतने में मुझे एक चाल सूझ पड़ी। और दिल में उसे धोका देना निश्चय कर उसके हाथ में एक रुपया रख मैंने कहा:—"यह रुपया लो, मुझे कुछ खाने को लाओ। देखो जल्दी लाना। भूख बड़ी जोर से लगी है।"

लेने को तो रुपया उसने हाथ बढ़ाकर ले लिया। पर जाने के बदले वह वहीं खड़ा रहा। उसके ढंग से साफ साफ जाहिर होने लगा कि वह कुछ कहना चाहता है, पर कह नहीं सकता है। निदान उस के इस भाव को मैं ताड़ गया और पुनः एक चाल चली:-"जान पड़ता है कि तुमने भी अभी तक कुछ नहीं खाया है। अच्छा, कोई परवाह नहीं, अपने लिये भी आठ आने का सौदा लेते आना।"

यह सुनने पर भी यद्यपि उसकी—इच्छा जाने की न थी तथापि मिलते हुए पैसे की लालचने उसे फिर न ठहरने दिया और वह यह कहता हुआ कि अच्छा आप यहीं बैठियेगा"चला गया उसके चले जाने पर मैं बेखटके ऊपर चढ़ गया। बैठक में सिवाय लुड़के हुए बोतल के और कुछ न दिखलाई पड़ा। चट् मैं धीरे धीरे सोनेवाले कमरे की तरफ गया। धीरे से दरवाजे पर हाथ रखा तो उसे भीतर से बंद पाया है। कंवाड़ का बंद मिलना कहिये की

मेरे शरीर की नाड़ी बड़ी तेजी के साथ चलने लगी। और दोनों कानों में इतनी तेजी से सनसनाहट मालूम होने लगी कि उसका बयान नहीं। अपने को सम्हालकर मैंने उसके छिद्र से झांककर जो कुछ देखा वह आज तक मुझे भूला नहीं है। साथ ही मुझे चक्कर आया और मैं हाय! करके गिर गया और सुध बुध न रही।

बारहवां रंग।

अब मैं दसवें परिच्छेद के सिलसिले की तरफ मुड़ता हूं। जिस समय उन आदमियों ने आक्रमण किया, उस समय मैं अचानक चोट लगने से गिर पड़ा। गिरने पर शायद मुझे एक दो मिनट तक होश रहा। फिर न मालूम क्या हुआ सो आज तक नहीं मालूम हुआ। जिस समय मेरी आंखें खुली हैं उस समय मैं अपने को एक चारपाई पर पड़ा पाया। इधर उधर दृष्टि पसार कर देखा तो कहीं कोई नहीं। न आदम न आदमजात। सिर्फ बंद कोठरी और एक कोने में टिमटिमाता हुआ चिराग। मैं धीरे धीरे उठा और बंद दरवाजे के पास आ बाहर की आहट लेने लगा। किवाड़ में कोई सूराख इत्यादि तो था ही नहीं कि कुछ दिखलाई पड़ता पर आहट से जान पड़ा कि बाहर कुछ आदमी हैं जिनका कंठरव मुझे पहिचाना सा जान पड़ा। जब उसपर मैंने खूब गौर किया तो एक की आवाज छैलबिहारी सी जान पड़ी। विश्वास तो नहीं होता कि वह ऐसी मंडली में शामिल होगा जो कि मेरे साथ इस बुरी तरह पेश आवेगी। निदान मैंने उस विचार को वहीं छोड़ किवाड़ खटखटाया। साथ ही एक भारी आवाज सुन पड़ी:–" जा, किवाड़ खोलकर मेरे पास ला।"

इसके दो तीन मिनट बाद एक मोटे ताजे पहलवान सरीखे आदमी ने किवाड़ खोल मुझसे कहा:–" यहां आवअ।"

मैं,—" क्यों ? "

आ० । देखव बुलावत हैं ।

मुझपर मार तो पहिले ही पड़ चुकी थी ! दूसरे उसकी लम्बी चौड़ी शकल ऐसी डरावनी थी कि मुझसे फिर कुछ भी कहा न गया । मैं चुपचाप उसके कहे मुताबिक उस आदमी के पास जो उससे भी मोटा ताजा, डील डौलवाला था, गया । उसने मुझे बड़े आओभगत से अपने पास, उस मैलीकुचली कथरी पर जिससे बदबू निकल रही थी, बैठाकर कहाः—" हमार मन त तोहसे कुछ लेवे देवेक नाहीं रहल, लेकिन इ लोग ले अइलन त ।

इतना कह वह चुप हो गया । मैं भी मन ही मन अनेक बातों को सोंचता हुआ इधर उधर देखने लगा । ओफ ! सोंचने से ही रोमांच होजाता है, बयान की कौन कहे । मुझे पूरी तरह तो याद नहीं । ताहम वह कमरा नहीं था बल्कि नर्ककुंड था । गो उसकी दीवारें और छत पक्की थीं तथापि वे काली हो गई थीं और छतों में दिन रात धुवां होते रहने के कारण भयानक और बड़े बड़े काले काले झाले लगे हुए थे । शराब की बदबू से सारा कमरा भरा हुआ था। एक कोने में आग की अँगेठी सुलग रही थी जिसकी आग से वहां के बैठे हुए बदमाश दम पर दम लगाते थे जिसका धुवां भी कोठरी भर में मंडरा और मुझे बेचैन कर रहा था । पर यहां के बैठे हुए शैतानों को उसकी जरा भी परवाह न थी ।

उसने फिर कहाः—" आप सुनली न ? "

डर के मारे तो मेरी बोटी बोटी थराथरा रही थी । पर क्या करता । अपने को सम्हाल कर मैंने धीरे से कहाः—" तब "

उसने कहाः—" तब क्या, समझ लेईं ।

इतने ही में एक तीसरा आदमी बगलवाली एक कोठरी से एक तेज, हाथ भर का लम्बा, चमचमाता हुआ छुरा लिये निकला

और बोलाः–"सरकार! बड़ा मालदार असामी है। रोज सौ पचास बजार में फूंक जाला। नूरी रंडी के ऊपर आशिक भी हौ।"

उस (सरदार) ने पूछाः–"हैं ऐइसन बात!"

वही० । हां सरकार!

उसकी बात सुन और उसका लम्बा चमचमाता छुरा देखकर मेरी बोटी बोटी कांपने लगा। पसीना सिर से पानी की तरह बहने लगा। यद्यपि मैं अपने को बहुत सम्हलने की चेष्टा करता पर दिल इतना भयभीत हो गया था कि वह काबू में न आता। लाचार हो उन बदमाशों से अपना पिंड छुड़ाने की गरज से मैंने कहाः– "मेहरबानी कर मुझे जाने की इजाजत दीजिये"

उस सरदार ने कहाः–"डरअ नांही। हम तोहरा के नुकसान न पहुंचाइब। पर सच सच बतावा कि ई बात कहां तक सच हौ।"

पाठक! आपही बतलाइये, मैं उसके इस सवाल का क्या उत्तर देता। इस समय मेरी समझ में न झूठ बोलने ही में भला दिखलाई पड़ता था और न सच्च कहने ही से यह विश्वास होता था कि छुटकारा मिल जायगा। निदान मैं कुछ उत्तर न दे उसकी तरफ आंसुभरी आंखों से देखने लगा।

और उसने कहाः–"आपनी क जानना चाही कि हमरा लोगन के और त कोई रोजगार हव नांही। यही तरा रंडीबाजन से रुपया वसूल करके हम लोग जीईला। पर न जानी तोहरा मुंहवा देखला से अमरा के मुहब्बत मालूम होला अ.... ....

तीसरे आदमी ने बात काट कर कहाः–"नाहीं सरकार छोड़े नांही। ई सरवा खूब रुपया उड़ावला"।

मेरी हालत इस समय कैसी थी, कि इसका पता किसी को ऐसे कैद में पड़े बिना नहीं मालूम हो सकता। डर के मारे मेरी

जैसी दशा थी वह ऊपरही लिखी जा चुकी है। आखिर में मैंने सरदार का पैर पकड़ बिनती कर कहाः-" मुझे जाने दीजिए । रात बहुत होगई है। घर पर भी अभी मरम्मत होनी बाकी है। "

यह सुन वह खखाकर हंसा। बोलाः-" ऐसे रहल तो फिर काहे ऐसन काम करे निकलता । "

यह सवाल भी ऊपर ही जैसा था। मैं इसका जवाब भी न देसका बरन् सर नीचा करके उसके पैरों पर गिर पड़ा । उसे भी ईश्वरेच्छासे दया आ गई और उसने पैर से सिर उठा कर कहाः-

" अच्छा जा पर (एक दुकान का पता बतलाकर) वहां आठ दस दिन के भीतर सौ रुपय्या दे आय । "

इसका भी मैंने कुछ उत्तर न दिया बरन् उसके पैर का धूल फिर लगा कर उठ खड़ा हुआ। साथही दो आदमियों ने आ मेरे आंख पर पट्टी बांधी और मुझे उठाकर ले चले। कोई दस मिनट के बाद जब मैं एक चबूतरे पर बिठाया गया और मेरे आंख की पट्टी खुली तो वहां सिर्फ एक फटा पुराना कपड़ा पहिने पर पान से मुंह लाल किये एक बारह बरस की लड़की खड़ी मिली ।

पट्टी खुलते ही लड़की ने कहाः-" देखो किसी से भेद न कहना । नहीं तो तुम्हारी जिन्दगी न बचेगी । "

मैंने ठंडी सांस से कहाः-" अच्छा । "

उसने कहाः-" लाओ मुझे कुछ देते जाओ ! नशा उखड़ा जाता है । "

मैंने जेब में हाथ डाला जो निकला उसे दे पिंड छुड़ाया। पर एक आफत से किसी तरह जी छुटा कि एक दूसरे ने आ दबोचा । अब इस विचार से दिल घबड़ाने लगा कि घर चल पिता जी को इतनी रात तक रहने का क्या जवाब देंगे ।

मैं इसी सोंच विचार में चला जा रहा था कि रास्ते में जानेवाले

आदमियों के झुंड को देख, आई हुई अलफ्रेड थियेटर कम्पनी का ख्याल पड़ गया और मैंने भी इसी बहाने को अपने बचाव के निमित्त बहुत उपयुक्त समझा। निदान जब मैं घर गया और पिता-जी ने विलम्ब का कारण पूछा तो मैंने झूठही एक बड़े आदमी का नाम बतला कर, जिनके यहां कि मैं प्रायः मिलने जाया करता था इस ढंग से कह दिया कि वे मुझे जबर्दस्ती थियेटर में ले गये। अस्तु.

तेरहवा रंग।

जहां तक मुझे अनुभव हुआ है जहां तक मेरा अंदाजा है है यह बात जगत्प्रसिद्ध है कि लाख रुपया के रोजगारी के पास मुश्किल से नगद पचीस हजार रुपये भी तैयार निकलेंगे। कारण कि, रोजगारी रुपये घर में रखना हानिकारक समझने के साथही नापसंद भी करते हैं। एक तरफ से रुपया आया झट उन्होंने उसको दूसरी तरफ फंसा दिया। वास्तव में यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो रुपये को योहीं घरमें रखने तथा बंक इत्यादिमें जमा कर देने में सिवाय चार पांच आना सैकड़े के सूद से ज्यादा फायदा नहीं हो सकता किन्तु यदि उसी रुपये को व्यवसाय में फंसा दे तो कम से कम तीन रुपये सैकड़े से कमके सूद नहीं निकलते।

मैं पहिलेही लिख आया हूं कि उस कम्पनी को, जिससे पिता जी ने माल मंगवाया था, रुपये की बड़ी जरूरत थी। इससे वह गिद्ध दृष्टि से पिता जी के देन को देखा करता और दिन रात दिल में ईश्वर से यही प्रार्थना किया करता रहा कि किसी प्रकार (पिता जी) इकरार से फेल हो जायं और वह एक मुश्त रुपया वसूल कर लेवे।

रजिस्टरी उस विलायती कम्पनी के एजन्ट, जोकि कलकत्ते में माल बेचने के लिये टिका हुआ था, के नाम २७ तारीख को

भेजी गई थी जो शायद २९ की शाम या ३० के सबेरे पहुंच गई होगी। पर उसने उसके खाली होने और नोट न मिलने का कारण तार से न दे, इस गरज से एक रजिस्टरी पत्र द्वारा भेजा जिसमें कि पिता जी अपने वादे से फेल होकर एक मुश्त रुपया चुका दें।

पहिली तारीख का सवेरा था. मुनीम और पिता जी बैठे हुये थे और मैं भी चुपचाप बैठा हुआ उनके कामों को देख रहा था कि एकाएक पिता जी बोल उठेः—"मुनीम जी, आज न मालूम रह रह कर मेरा बायां हाथ क्यों फड़क रहा है।"

वह अभी इतनाही कहने पाये थे कि एक डाकियां एकाएक सामने आखड़ा हुआ और पिताजी से बोलाः—" एक रजिस्टरी है साहब।"

लाइये कह पिता जी ने हाथ बढ़ाया। रजिस्टरी हाथ में लेतेही पिता जी की निगाह भेजने वाले पर पड़ी। उस कम्पनी का नाम देखते ही उनका माथा ठनका। बड़ी अधीरता से उन्हों ने उसे चारों तरफ से देखकर खोला। पत्र के मजमून पर निगाह पड़ते ही उनके आंखों के नीचे अंधेरा छा गया, पत्र हाथ से छूट पड़ा और हाय! कहकर पासही की तकिये पर वे उठंग गये।

पिता की ऐसी दशा देखते ही मेरा कलेजा बित्तों उछलने लगा और चेहरा सूखकर ऐसा पीला हो गया कि काटो तो लहू नहीं! मुनीम ने झट दस्खत कर डाकिये को बिदा किया। उधर दुकान का खिदमतगार दौड़कर पंखा झलने लगा। जब पिताजी की तबीयत कुछ ठहरी तो उन्होंने एक आह खींची और मुनीमने पूछाः—" कहिये साहब! लिखा क्या है?"

पिता०। क्या बतलायें! आपने तो हमारे सामने ही उसमें पांच सौ के नोट बंद किये थे।

मुनी०। जीहां। देखिये उसकी रसीद भी यह है।

यह कह मुनीमने रसीद को पिताजी के आगे रख दिया।

उन्होंने उसे उलट पुलट कर देखा। पर उससे क्या पता चलता पिताजीने कहाः—"रजिस्टरी तो भेजी गई और वह भी पाना स्वीकार करता है। पर लिखता है कि रजिस्टरी में नोट के बदले कागज के कतरन निकले जो सबूत के लिये रक्खे हुए हैं।"

मुनी०। यह कैसे हो सकता है। रजिस्टरी में तो आप ही के सामने नोट रख कर मुहर की गई थी।

पिता०। रजिस्टरी लगाने कौन गया था।

मुनी०। चिथरू गया था।

यद्यपि चिथरू एक विश्वासवान पुरुष था और नित्य चार चार पांच पांच सौ लेकर जाता और स्टेशन से माल छुड़ाकर लाता था तथापि पिताजी को पहिले उसी पर सन्देह हुआ और उन्हों ने पूछाः—"कितनी देरमें रसीद लेकर आया।"

मुनी०। पांच मिनट से ज्यादा न लगा रहा होगा।

यह सुनकर पिताजी चुप हो रहे। परन्तु इस वक्त उनकी कैसी दशा थी यह उनका ही दिल जानता था। चेहरे की कांति चली गई थी, होंट सूख गये थे तथा मुंह पर इतनी उदासी बरस रही थी जो बयान नहीं की जा सकती। इस वक्त मेरी क्या हालत रही होगी यह भी आपही लोग अनुमान कर लीजिये। दिल में नाना प्रकार के ख्यालात पैदा हो रहे थे। कभी तो मैं अपने किये पर पछताता और कभी दुनियां भर के देवी देवताओं के दिलही दिल में मनाता कि हे फलाने महाराज लाज रखलो तो मैं इतना मीठा चढ़वा चढ़ाऊंगा। पर कहीं कर्म भी इन मिनतियों से भोग्यमान हुए बिना रह सकते हैं? आखिर में मुझे इन सबका ऐसा दंड मिला कि आज दिन मेरी ऐसी दुर्गति हो रही है।

पिताजीने ठंडी सांस खींचकर कहाः—"जरा कम्पनी का हिसाब तो देखिये कि कितना निकलता है।"

यह सुनतेही मुनीम ने झट् पट् खाता खोला, चट् चट् कर पत्रों को उलट और उस कम्पनी का लेखा निकाल सामने रख दिया। पिताजीने जमा खर्च को बड़ी देरतक गौर से देखने के बाद कहाः—" जोड़िये तो सही।"

मुनीमने आज्ञा पातेही दो मिनट के भीतर एक पुरजा सामने रख दिया। देखने से मालूम हुआ कि कम्पनी का ३०४०९॥≡) ६ पाई देना निकला। इतनी रकम देखतेही पिताजी के आंखों में आंसु भर आया क्योंकि इतनी बड़ी रकम कम्पनी को एक मुश्त देनी थी। यदि आज कल के हुंडी बेच्चू महाजनो की तरह पिता जी भी होते तो उन्हें जरा भी गम न होता? पर वे तो करजा के नाम से कांपते थे। इसके अतिरिक्त ईश्वर की कृपा से आज तक उन्हें कभी किसी से लेने की जरूरत भी न पड़ी थी। इससे आप लोग जान ही सकते हैं कि ऐसे आदमी को किसी के सामने मुंह खोलने में कितनी कठिनाई होती है। बाज बाज जगह तो मुझे ऐसा भी देखने का मौका हुआ है कि ऐसे आदमी भूखे सो रहते हैं पर दूसरे से नहीं मांगते।

सोंच सागर में गोता खाते खाते पिताजी ने एकाएक पूछाः— " क्या आप रजिस्टरी बाहर छोड़कर खाने गये थे।"

यह सवाल सुनते ही मुझपर बज्रपात हुआ और मुनीम ने जवाब दियाः—" नहीं रजिस्टरी तो नहीं छोड़ गया था पर जल्दी में ताली छूट गई थी जो खाके आने पर यहीं (जगह बतलाकर) पड़ी मिली।"

पिता०। यहां आप किसको छोड़ गये थे।

मुनी०। यही (मेरी तरह इशारा करके) बचऊ (क्योंकि वे पिता जी के समय और पुराने होने के कारण मुझे बचऊ कहा करते थे) और वृन्दावन रहे।

यह सुनकर मैंने सारा किस्सा सुना दिया और कहा:—" जिस समय मैं नूरा के यहां गया था उस समय इसी मेरे दाहिने जेब में रजिस्टरी रक्खी हुई थी।".

दोनों ने शोक प्रकट करते हुए कहा:-" ओफ ! पांच सौ रुपये पर पानी फिर गये। खैर होगई कि "गाय ने थोड़ी ही खेत खाई!" नहीं तो ऐसे मौकेपर जान नहीं बंचती।

इतने ही में छैलविहारी आगया और कहने लगा:-" ईश्वर को धन्यवाद दीजिए कि आपकी जान बच गई। ज्योंहीं मुझे खबर लगी त्योहीं मैं दौड़ा हुआ गया, देखा दो सफरदा आपको मुर्दे की तरह उठाये कोठे से उतर रहे हैं। जातेही मैंने उन्हें झिड़का फिर एका कर आपको यहां उठा लाया।

यह सुनकर मैं चुप हो रहा। पर सच पूछो तो आज तक मुझे उस नोटका, यद्यपि मैं अपनी लाखों की मिलकियत बरबाद कर चुकाहूं रंज बना हुआ है। अब मैं किसको चोरी लगाता? किससे पूछता? साथियों से, उनके बिगड़ जाने के कारण ज्यादा पूछ भी नहीं सकता था। पर जहां तक मुझे स्मरण होता है और जहां तक मेरा ख्याल है उस नोट को इन्हीं तीनों साथियों में से किसी ने चुरा लिया। क्योंकि यह बात विचारने योग्य है कि वहां (नूरी के यहां) किसी को इस बात की खबर नहीं थी कि आज मैं रुपया लेकर आऊंगा। दूसरे जिस समय मैं गिरा उस समय रजिस्टरी सब के नीचे वाले वास्कट में थी; तीसरे कोई ऐसे पढ़े लिखे आदमी का इस थोड़े अरसे में आना भी नामुमकिन है, चौथे रजिस्टरी पर बीमा शब्द भी नहीं लिखा था कि पढ़नेवाला पढ़कर समझ लेता कि यह कोई सादा पत्र है या इसके भीतर नोट भरा हुआ है

निदान मैं उदासी के समुन्द्र में डूबा हुआ वहां से उठा और चुपचाप घर आ सिर में दर्द होने का बहाना बता पड़ रहा।

इसके चौथे ही दिन मैं उस आफत में फंस गया। जिसका उल्लेख गत (तेरहवां) परिच्छेद में किया जा चुका है।

पन्द्रहवां रंग।

घर पर आते ही शोक के कारण पिता जी पड़ रहे। स्वामीभक्ता पतिव्रता माता भी उनके शोक से शोकाकुल हुईं। जिस समय पिता जी ने धीरे धीरे सारा मामला उनसे कह सुनाया तो वह छाती पीटने और रोने लगीं। माता जी को रोते देख मेरी पत्नी भी दुःखित हुई। पिता जी ने कहाः—"अब तो कम्पनी एकरारनामे के अनुसार कुल रुपया मांगेगी।"

माता ने पूछाः—"कुल कितना है?"

पिता०। करीब साढ़े तीस हजार के है।

मात०। (छाती पीटकर) हाय! हाय! इतना रुपया घर में कहां!

इस समय माता की कैसी दशा थी, इसका पता उनके दिल ही से पूछने पर चल सकता है। मतलब यह कि उस दिन मेरा घर 'शोकभवन' बना हुआ था। भोजन तैयार था पर उसी शोक में किसी ने खाया तक नहीं। मैं भी मारे डर के उस दिन दुकान से घर को नहीं गया। दोपहर को वहीं बाजार से पूरी मंगा खा लिया था। पिता के दोस्त या साथ के बैठने तथा उनके दुःख से दुःखित होने वाले आते और मुझे धिक्कारते, लानत मलामत करते। कोई कोई तो जोश में आकर कुछ बुरा भला भी कह बैठते। पर मैं सब की चुपचाप सिर झुकाये सुनता रहता और जिस किसी को उत्तर देने लायक समझता उसे अट सट उत्तर दे अपने को सच्चा जाहिर करता। पर यह सच है कि झूठी बातों का सुननेवालों पर कुछ भी असर नहीं होता और सच्ची बातें तुरंत पेट में पैठ जाती

हैं। इसी से पाठकों को यह जान लेना चाहिये कि चाहे मैं उनलोगों को कितनी ही सफाई सुनाता पर आखिर में लोग जाते वक्त यह अवश्य कह के उठते थे कि "इसमें तुम्हीं कुसूरवार हो। तुम्हारे सिवाय ऐसा काम और कोई नहीं कर सकता क्योंकि मुनीम आज के तो नौकर हैं नहीं। ये तो उस वक्त के पुराने नौकर हैं जब कि तुम्हारी पैदाइश भी नहीं हुई थी।" बेचारा सच्चा बुड्ढा आंसु बहा बहाकर लोगोंको अपनी सचाई सुनाता। वास्तव में उस समय उसकी बातों में इतना करुणा भरा हुआ था कि सुननेवाला मोह जाता और उसे तरह तरह से ढांढ़स दिये बिना न रहता।

लोगों की मलामतों को सुनते सुनते मेरे नाकों दम आ गया। मैं, दिल में यह सोंचकर उठा ही था कि कहीं किसी अपने दोस्त के यहां बैठकर जरा दिल बहलाऊं, कि एक नौकर उपस्थित हुआ और बोलाः-" चलिये आपको बुलाते हैं।"

एक तो मैंने चोरी की थी, दूसरे वे रुपये भी काम में न आये तीसरे काम बिगड़ जाने से पिता जी अत्यंत दुःखित हुए थे। इससे मुझे उनके पास (सामने) जाते बड़ा भय मालूम होने लगा। मैं तो पहिले ही से कांप रहा था, पर किसी प्रकार, सोंचता बिचारता और नाना प्रकार की आपत्तियों को हृदयङ्गम करता हुआ मैं उनके साम-ने जा पहुँचा। कहते छाती फटती है, हृदय चूर्ण विचूर्ण हुआ जाता है। क्या कहूं, उस समय का दृश्य ऐसे करुणा से भरा हुआ था कि बयान नहीं किया जा सकता। पिता का चेहरा उतरा हुआ था, होंट सूखे हुए थे, सिर के बाल बिखरकर चेहरे पर फटके हुए थे आंखें आंसु से भरी हुई थीं। माता जी भी उन्हीं के दुःख से दुःखित हुई पास ही बैठी थीं। पिता जी ने डबाडबाई हुई आंखों से कहाः-" तुमने बड़ा बुरा काम किया। कहो अब साढ़े तीस हजार रुपये कहां से आवें।"

मैंने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। शायद तीन मिनट बाद उन्होंने कहाः—"पांच सौ के लिये तुमने तीस हजार पर पानी फेरा।"

मैंने सिर नीचा किये, पैर के अंगुठे से गच की मिट्टी को निखोरते हुए जवाब दियाः-"मैंने क्या किया।"

पित०। तुमने नहीं किया तो किसने किया (माता जी से) बिचारा मुनीम आज मेरे साथ तीस बरस से काम कर रहा है वह ऐसा नहीं कर सकता।

मैंने उसी प्रकार सिर नीचा किए ही किये उत्तर दियाः-"मैंने भी तो नहीं किया।"

यह सुनते ही पिता जी का चेहरा बदल गया। मुरझाया हुआ चेहरा, क्रोध की अग्नि से चमककर लाल हो उठा। उन्होंने तमककर पूछाः-"तुमने नहीं किया तो और किसने किया।"

मैं,-मैं क्या जानू।"

पिता०। (कड़ककर) चोरी तिसपर सीनाजोरी।

यह कह उन्हों ने उठ मुझे पांच सात पड़ाके जमाये। उधर उनका हाथ छूटा कि माता भी उनके पैर से लिपट गईं और रो रोकर कहने लगीः-"स्वामी! मेरे स्वामी! अब इस मारपीट से तो काम बन नहीं जायगा, क्षमा करो।"

पिता मारना छोड़ और अलग बैठकर कहने लगेः-"अब कहां से साढ़े तीस हजार रुपये लाऊं?"

माता ने इसका कुछ उत्तर न दिया। मैं भी सिसकता हुआ दूसरे कमरे में चला गया।

इस घटना के आठ दिन बाद उस कम्पनी का तार आया कि पन्द्रह दिन के भीतर तमाम रुपया चुका दो नहीं तो दावा दायर कर दिया जावेगा। तार पा पिता जी उसके एजेन्ट के पास कलकत्ते गये।

विचारों की भक्ति का ह्रास हो गया या नहीं? इन्हीं सबों के जाने के कारण अनेकानेक म्लेच्छ भी ठाठ बदल बदलकर मेले में पहुंचते और लोगों की शुद्ध आत्मा को संकुचित तथा अपवित्र कर देते हैं।

इन्हीं तमाम बातों के कारण यहां के तमाम मेले पापमय हो गये हैं। मेरे ख्याल में अब शायद सैकड़े पीछे पांच आदमी भक्ति भाव के साथ देवी तथा देवता का दर्शन करते होंगे। नहीं तो कोई उन वेश्याओं के पीछे पीछे, उनकी दुम सुहराते हुए, कोई उनके घूरने की लालसा से और कोई बहाने का अच्छा मौका हाथ लगा देख उनसे मिलने की इच्छा से वहां जाते हैं। मतलब यह कि सौ में पांच आदमियों के हृदय में पुन्य और बाकी पचानबे के दिल में पापमय लालसायें लहराया करती हैं। उधर वे चांडाल भी अपने तमाम सरोंके चलाने से नहीं चूकतीं। जहां उन्होंने किसी नवयुवाको अच्छे कपड़े लत्ते से अपनी तरफ लक्ष देखा तहां एक न एक सर चलाकर उसे घायल किया। इसके अतिरिक्त ऐसे मेलों में उनके पुराने असामी जो उन्हीं के कारण दरिद्र हो गये रहते हैं, और रुपया न होने के कारण वहां (कोठे पर) नहीं जा सकते हैं, इस लालसा से अधिकता के साथ जाते हैं कि छिप लुककर "कलयुगी देवी" का दर्शन कर लेंगे। परन्तु उन देवियों की निगाहें भला कैसे चुक सकती हैं? उनकी निगाह तले जहां ऐसा असामी पड़ा तहां झट वे अपने साथ के सफरदाइयों तथा लड़कों (क्योंकि हरएक रंडियों के यहां दो एक ऐसे जुठहे अकसर रहते हैं) को भेज उन्हें पकड़वा मंगाती है। जहां वह दूत पहुंचा तहां उस विचारे की आत्मा कूंचकर गई। इसीप्रकार उनके बहुत से चढ़वा चढ़ानेवाले हो जाते हैं। मैं इस विषय को कहां तक लिखूं, किस प्रकार पाठकों को समझाऊं? मैंने खुद अपनी आंखों

से "लम्फ के ऊपर बहुत से पातिङ्गे।" वाली कहावत को चरितार्थ होते देखा है,–एक एक रंडियों के पीछे दल के दल लोगों को उनकी खुशामद करते पाया है।

पन्द्रहवें परिच्छेद की घटना को धीरे धीरे दो महीने के लगभग हो गये, सावन का महीना सिरपर आगया इससे यह बात तो हमारे पाठकों से छिपी न होगी कि सावन के महीने में प्रायः चारों तरफ एक न एक पर्व पड़ा ही करता है। उनकी गिनती गिनाकर मैं पाठकों को कष्ट नहीं दिया चाहता इससे सीधे अपने सिलसिले की तरफ मुड़ता हूं। धीरे धीरे सावन भी बीता,–भादों आया चारों तरफ "रथयात्रा।" के मेले की धूम मच गई। जिस रोज मेले का तीसरा दिन था उस दिन मैं अपने लम्पट साथियों के साथ उसी बैठके में जिसका भाड़ा इत्यादि अब मुझी को देना पड़ता था,–बैठा हुआ था। बात ही बात में मेले की बात आई और छैलबिहारी (अब वह मुकद्दमा, जिसमें कि उसके ऊपर वारंट निकला था। समाप्त हो चुका था) नें कहाः–"हां ठीक! आज रथयात्रा का आखिरी दिन है। चलिये हमलोग भी चलें।"

छबी०। चलना तो जरूर चाहिये।

मैं,–मगर यार मेरी तबीयत तो जरा भी नहीं करती है। और न मेरे पास रुपये ही हैं। तुम लोगों ने कहा था कि एक दूसरा महाजन ठीक करेंगे अभी तक कुछ भी नहीं किया और न नोट ही का पता चलाया।"

नोट का नाम लेते ही तीनों के मुंह की रंगत फीकी पड़ गई। अगर कोई समझनेवाला होता तो फौरन इसका मर्म जान लेता परन्तु मैं तो अंधा हो रहा था इससे मैंने उस तरफ ध्यान न दिया रँगीले ने कहाः–"घबराइये नहीं, मैं थोड़े ही दिनों में एक न एक महाजन ठीक किये देता हूं।"

मतलब यह कि मेरी इच्छा न जाने की होनेपर भी उन सभों ने मुझे समझा बुझाकर और रंग त्रिरंगी बढ़ावे जैसे " बहुत से मामले जाते हैं।" "एक से एक रंग दिखलाई पड़ते हैं" इत्यादि इत्यादि कहकर राजी कर लिया। निदान मैं पांच मिनट के लिये घर गया और ठाठ बदलकर उनसे जा मिला। उसी वक्त दो गहरेबाज पटनहिये इक्के भाड़ेपर आये और चारों आदमी सवार होकर मेले में जा पहुंचे।

ज्योहीं मैं मेले में पहुंचा त्योहीं जो सामने के एक बागीचे के बैठके पर जो नजर पड़ी तो मेरा दिल उस तरफ को उड़ गया। मेरे दिल से दर्शन इत्यादि का ध्यान बिलकुल जाता रहा। मैंने रँगीले से कहाः—" यार सचमुच में इस जगह तो बड़े बड़े लोग आये हुए हैं।"

रँगी०। हमने आपसे झूठ तो कहा नहीं था।

मैं,—फिर जरा आओ इन देवियों का दर्शन तो कर लें।

छबी०। अरे जरा चलिये, पहिले जगन्नाथजी का दर्शनकर लीजिए फिर इनका दर्शन कीजिए, नहीं तो जो देखेगा वह क्या कहेगा।

निदान मैं चुप हो रहा और दिखाने के लिए भक्तिभाव से डाली ले चढ़ा आया। फिर एक एक करके इन कलियुगी देवियों का दर्शन करने लगा। तीनों दोस्तों के साथ मैं इधर उधर जान पहिचानों से मिल तथा अपने साथियों के साथ हँस बोल रहा था कि धीरे धीरे कई एक रंडियों के सफरदा, जिनके यहां जा मैं अपना मुंह कालाकर आया था, मेरे पीछे पीछे लग गये। निदान मैं उनकी बिनतियों के अनुसार उनके (रंडियों के) यहां पहुंचा और चढ़वा चढ़ाने लगा। मुझे किसी के यहां गाड़ी भारा, किसी के यहां कुछ, किसी के यहां कुछ। मतलब यह कि सब सफरदा इत्यादिकों के खर्चे

के मेरे दस पन्द्रह रुपये उड़ गये। धीरे धीरे मैं टहलता हुआ एक दूसरे, पास के बागीचे में जा निकला। देखा यहां भी कई मुर्तियां विराजमान हैं, जिनके पीछे भी दल के दल लोग लगे हुए हैं। उनमें से एक को जो वास्तव में विधि के कारीगरी की नमूना थी, देखकर मैंने पूछाः—" कहो, छैलबिहारी! यह कहां की रहनेवाली हैं।"

छैल०। क्या आप इनको नहीं जानते। इनका नाम राजराजेश्वरी है।

मैं,-(आश्चर्य से) क्या यही राजराजेश्वरी हैं। ओफ इन्होंने बला की सूरत पाई है।

रँगी०। बेशक! रंडियों में इनकी जितनी न तारीफ की जाय थोड़ी है। रईस से पैदा ही ठहरीं फिर क्यों न खूबसूरत होतीं। इसी खूबसूरती पर राजा से इनका पाहिला सम्बंध हुआ था। हमने तो देखा नहीं पर सुना है कि इनकी मां भी यहां की तमाम रंडियों में बेनजीर थीं। ईश्वर की कृपा से अपनी मां की तरह ये भी " सोने में सुगंध " वाली कहावत को चरितार्थ करती हैं।

मैं,-यहां पर इस कहावत के क्या मानी?

छैबी०। (हंसकर) शायद आपने समझा नहीं। जिसप्रकार आप इन्हें लावण्य में अद्वितीय पाते हैं उसी प्रकार ये गाने में भी फर्द हैं। क्या मजाल कि कोई रंडी इनके सामने बाजीमारलेजाय।

मैं,-भाई यदि ये ऐसी हैं तो जरूर इनके यहां चलना चाहिये

सचमुच में राजराजेश्वरी की सुन्दरता अकथनीय थी। सुन्दर स्त्रियों के विषय में कवि लोग जैसा नखसिख का बयान करते हैं तमाम बातें इसमें थीं। शरीर का कोई अंग ऐसा न था कि जो मारू न होता। आवाज भी बुलबुल की तरह थी निदान मेरे दिल का तोता अब राजराजेश्वरी के हाथों पर जा बैठा और मैंने अपने

साथियों से यह निश्चय कर लिया कि इन्हीं की गाड़ी के पीछे पीछे एक्का ले चला जाय और इनके घर पहुंचतेही मुजरे की फ़रमाइश की जाय ।

आखिर में यही बात हुई भी । दीया बल जाने के थोड़ी देर बाद राजराजेश्वरी की गाड़ी चली । साथही करीब पन्द्रह बीस एक्के भी साथ में छूटे । मैंने भी अपना एक्का उन्हीं के साथ छोड़ा ज्योंहीं बाई जी गाड़ी से उतरकर घर में पहुंची हैं त्योंही मैंने भी तीनों साथियों के साथ पहुंचकर मुजरे की फरमाइश की । पर इस जगह विशेषता यह पाई गई कि बाई जी ने न मुझको और न मेरे साथियों को सलाम किया और न अन्य जगह की तरह खैरो-आफियत पूछा । बरन् थोड़ी देर के लिये कुछ जलपान के निमित वह ऊपर चली गई तो एक सफरदा जो मेरा कुछ जान पहिचान था मेरे पास आया और धीरे धीरे कहने लगाः–" आप इनकी इस रुखाई से नाराज नहीं होइयेगा । इनको इसी प्रकार अपने यहां के आनेवालों के मुहब्बत की परीक्षा लेने की आदत है । "

मैं,–मगर यह आदत तो बड़ी बुरी है ?

सफ० । पर आप जानते ही हैं कि " दुधार गाय के चार लात भी बरदाश्त किये जाते हैं । "

मैं,–बात तो ठीक है पर इस तरह तमाशबीनों के दिल टूट जाते हैं ।

इतने में बाई जी भी ऊपर से आगई । सफरदा खसककर अपनी जगह बैठ गया । पर पहिले की अपेक्षा इस समय बाई जी का चेहरा प्रफुल्ल था । वह आकर पुनः खिड़की पर बैठगई । साथही खिदमतगार आया और उसने पूछाः–" बाबू जी ! पानआवेगा ।"

यह सुनते ही मैंने उसके हाथ में एक रुपया रखदिया । वह गया और पान वगैरह ले आया । तीनों आदमियोंने पान खाया सफर-

दाओं को दिये। तदनन्तर उसी सफरदाने पूछाः-"तो फिर बजे न?"

मैं,-(जरा रुखाई से) बार बार भूत कबूलाते हो क्या ?

यह सुनकर भी बाई जी ने अपना दर न छोड़ा। बड़ी मुश्किलों से लापरवाही के साथ मानो उन्हें कुछ परवाह ही नहीं है, वह खिड़की से खसक मुझसे चार हाथ की दूरी पर बैठीं। नौकर ने दुपट्टा दिया उन्हों ने काँखकूंखकर उसे सिर पर ओढ़ा। तदनंतर मुजरा होनेलगा। शायद और जगह की अपेक्षा आधा यानी दो तीन गाना गाकर उन्होंने मुजरे को खतम कर फिर लापरवाही से जा खिड़की पर डेरा जमाया। मैं भी उसके रोबके आगे न बोला। बरन् उदास मन से उसे दस देने चला। रुपया को देख उसने अपने दाहिने बजाने वाले सारंगिये को इशारा किया। उसने भी हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया। इस दिन और कोई नई बात नही हुई इससे उसका विवरण देकर हम अपने पाठकों के अमूल्य समय नष्ट नहीं किया चाहते। इस बीच में छैलविहारी ने एक दूसरा महाजन ठीक करही लिया था। इससे रुपये की कमी होती ही न थी और मैं बराबर बिला नागा राजराजेश्वरी के यहां पहुंचने और रुपयोंकी आकर्षन शक्ति से उसे अपनी खुशामद करने के लिये विवश करने लगा।

सत्रहवां रंग।

सच है इस कलयुगी समय में रुपये को विधाताने बड़ी सामर्थ्य दी है। इस जमाने में रुपये के ताकत की सीमा नहीं। रुपया जो चाहे सो करडाले, रुपया शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु बना देता है। रुपया के लिये बाप बेटे का और बेटा बापका दुश्मन बन जाता है। इस जमाने में ऐसा कोई नहीं है जिस पर रुपया अपना जादू न चलाकर वशमें न कर सकता हो। इस कलयुगी समय में रुपया ही एक ऐसा पदार्थ है जिसमें दुनियां भर की ताक़त भर

दी गई है। राजा और प्रजा की चाल आजकल रुपये के इशारे पर नाचती और गाती है। जो राजराजेश्वरी पहिले दिन मुझ से (मुझे साधारण जानकर) इस प्रकार पेश आई थी आज दिन वह मेरा आदर भाव करने लगी। जब जब मैं उसके यहां पहुंचता तब तब वह मुझे ऐसे खातिरभाव से बैठाती और बातचीत करती कि शायद ही नूरी तथा दूसरी (क्योंकि बाजार का कोई भी कोठा मुझ से छूटा नहीं था) रंडियों ने किया होगा। धीरे धीरे करके उसने मुझपर भीतरी औ बाहरी दोनों तरफ से इतना झूठा प्रेम बढ़ाया कि आखिर में ठगे जाने पर भी (क्योंकि वेश्याओं के प्रेम की तरफ से तबीयत हटगई थी) मुझे उससे प्रेम जताना ही पड़ा। वह मेरे साथ दो दो घंटे तक बैठी प्रेम भरी बातें किया करती। मुहब्बत के रंग बिरंगी किस्से सुनाती, अपनी चटक मटक दिखा दिखा कर रिझाती और इस ढंग से टेंट खाली करवा लेती कि मालूम तक न होता। मतलब यह कि उसने इस ढंग से मुझपर अपना जादू चलाया कि मुझे आखिर में उसके वश में हो जाना ही पड़ा और अपने दिल में यह समझकर मैं पुनः फूल गया कि वास्तव में वह मुझ पर आशिक हो गई है।

पर मेरे प्रिय पाठकगण! मेरे इतना लिखने से आपलोग भ्रम में न पड़ जाना,–धोके में न आना क्योंकि राजराजेश्वरी ने मुझ पर अपना जादू इसी प्रकार से फूंका था कि जिससे मुझको भी जरा सा गुमान न हुआ कि यह लड्डु में जहर दे रही है, मुझे मीठी छुरी से हलालकरने को तयार हो रही है। क्योंकि धीरे धीरे करके इसी प्रकार महीनों में गा बजाकर, रंगबिरंगी करश्मे दिखलाकर मुझे अपने वश में कर अपनी करामात को इस प्रकार दिखलाना शुरू किया।

एक दिन संध्या को जब मैं लम्पट साथियों के साथ उसके यहां

पहुंचा तो वह अपने बैठक में अकेली बैठी हुई थी। झाड़ की धीमी धीमी रौशनी निकलकर कमरे में चारों तरफ फैल रही थी। अतर की भीनी भीनी और खुशगवार सुगंध की लपट कमरे में चारों तरफ गमक रही थी। मुझे देखते ही उसने सलामकर बैठाया और फिर इधर उधर की गप्प लड़ाने लगी। मुजरा के खतम होनेपर थोड़ी देर की इजाजत लेकर राजराजेश्वरी अपने कमरे में चली गई। जिसके दोही मिनट बाद वहीं का एक जुठखोरा मेरे पास आया और उसने धीरे से कहाः—" चलिये अपने कमरे में बुलाती हैं।"

यह सुनते ही मेरी बांछें खिल गईं। साथियों ने मुस्कुराकर और हसद भरी निगाहों से मेरी तरफ देख इशारा किया कि ओ आज भाग्य खुल गये। निदान मैं भी मन ही मन पगता हुआ कमरे में पहुंचा। जाते ही राजराजेश्वरी अपनी मशहरी से उठ बैठी और मेरे गले में हाथ डालकर डबडबाई हुई आंखों से बोलीः– " प्यारे! अब कल के लिये मुझे माफी दो।"

मुझे तो कुछ मालूम ही न था। मैंने अकचकाकर पूछाः— " माफी कैसी ?"

राज०। बस सिर्फ कल भर के लिये।

मैं,–भई यह कैसी बात है। मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता है।

राज०। (डबडबाई हुई आंखों से) बस इतना कह दो कि माफ कर दिया। पीछे सारा हाल मालूम हो जावेगा।

उसके चेहरे की तरफ निगाह करते ही मेरे दिल की मुहब्बत ने बेतरह जोर किया और आपसे आप मेरे मुंह से निकल गयाः– " बिना मतलब जाने तो मैं माफी दे नहीं सकता।"

यह सुनते ही आंसु के बुंद उसके कपोलों पर बह आये। उसने कहा कि,–कल भागलपुर के एक राजा, जो कि यहां अपनी नौजवानी में पढ़ने आये थे, और तभी से उनकी मेरी जान पहिचान

भी है,-आनेवाले हैं। आज उनका एक खत आया है (लड़के को पुकारकर) ताक पर खत रखा है उठा तो लाना।"

मैंने लड़के से कहाः-"नहीं नहीं खत लाने की कोई जरूरत नहीं। (फिर राजराजेश्वरी)। अच्छा तब मुझसे माफी किस बात की चाहती हो।"

राज०। यही कि कल........................

मैं,-(बात काटकर) नहीं नहीं। मुझसे तो तुम्हारे देखे बिना नहीं रहा जायगा।

यह कह मैं झट बाहर निकल आया। पीछे पीछे राजराजेश्वरी भी आई। तदनन्तर सब लोग वहां से बिदा हुए। रास्ते में मैंने अपने साथियों से इसका जिक्र किया तो छैलबिहारी ने कहा:—"आपने बहुत अच्छा किया। यही मौका तो इज्जत सम्हालने और रंडियों को अपनी मरदूमी दिखाने का है।"

मैं,-हां यार बड़े अफसोस की बात है कि उसने मुझे एक मामूली आदमी समझ लिया........

रंगी०। (बात काटकर) हां तभी तो उसने माफी चाही।

इसके साथ ही मैं रुपये के सोंच में पड़ गया। क्योंकि सारी मरदूमी रुपये की थी। यदि रुपया न हुआ तो रंडी के आगे इज्जत जाती रहेगी। मैं इन्हीं बिचारों के आ जाने से तुरंत कुछ उत्तर न दे सका कि इतने में छबीले ने कहा:—"खैर कल राजा साहब की भी देख ली जावेगी।"

इसके बाद देर तक रुपयों के लिये गुड़चों गुड़चों होती रही। आखिर में उन लोगों ने मुझसे हजार रुपये के लिये दो हजार का एक पुरजा लिखवाया और यह सल्लाह भी दिया कि घर से कुछ रकम भी लेते आना।

अठारहवां रंग।

यद्यपि पिता जी ने कम्पनी का रुपया चुकती दे मामले को जहां का तहां ही ठंडा करके बाजारी इज्जत बचाली थी परन्तु घरेलू इज्जत जाने तथा रकम इत्यादि के बिकने से उनके कलेजे पर इतनी गहरी चोंट पहुंची कि उनकी जिन्दगी ही पर ठन गई। रुपया दे चुकने के शायद ही दस दिन तक पिता जी अच्छे रहे होंगे। इसके बाद ही धीरे धीरे चिंता-ज्वाला से उनका शरीर जलने लगा। रह रहकर वे बीमार पड़ने लगे। ऐसा कोई भी सप्ताह न बीतता था कि उनको बुखार न आता हो। यद्यपि माता उन्हें नाना प्रकार के उपदेशों से समझाती बुझाती, रंग विरंगी बातें सुनाकर उन्हें ढाढ़स बंधाती रही परन्तु उनके हृदय में चिंता की ऐसी चोट लग गई थी कि माता जी का उपदेश मरहम कुछ न कर सका। उधर तो धीरे धीरे उनकी अवस्था क्षीण होने लगी इधर मैं फिर राजराजेश्वरी की झूठी मुहब्बत में नये सिर से पगने लगा।

जब से पिता जी की उपरोक्त अवस्था हो गई तब से माता जी तथा मेरे घर में लोग बिह्वल रहने लगे। पिता जी की अवस्था के साथ ही साथ धीरे धीरे पतिभक्ता माता जी की अवस्था में भी परिवर्तन हो गया। घर में भोजन बनने पर भी सब लोग दोनों समय भोजन न करते। लोगों की सुधबुध इतनी जाती रही थी कि जो चीजे जहां पड़ी हैं वह वहीं पड़ी रहतीं, कोई भी उनका पूछनेवाला न दिखाई देता। पर इतना होनेपर भी माता जी दोनों वक्त मेरे खाने पीने की सुध ले लिया करती थीं और मेरे ऊपर पूर्वही के समान प्रेम रक्खे रहतीं तथा मेरी स्त्री को बारबार पति सेवा के लिया शिक्षा दिया करतीं।

यद्यपि घर की ऐसी दशा होगई थी परन्तु मुझे इसका जरा भी गम न था। मैं मजे में राजराजेश्वरी के यहां गुलछर्रे उड़ाता।

आधी आधी रात को घर आता। पिता जी के अस्वस्थ्य रहने के कारण मनमाना काम करता और कोई कुछ न पूछता।

निदान अपने साथियों से विदा होकर लगभग दस बजे रात को मैं घर आया। रुपये की चिंता तथा राजा से मुकाबला के ख्याल से सिर चक्कर खा रहा था। आते ही माता मुझे भोजन करा और सोने जाने के लिये आदेश देकर स्वयं पिता जी की चारपाई के पास चली गई। मैं भी थोड़ा बहुत खा और अपनी स्त्री के गहने चुराने के इरादे से झट उसके कमरे में जा पहुंचा और झूठही सो जाने वालों की तरह खुर्राटे भरने लगा। धीरे धीरे जब सब लोग सो गये और मेरी स्त्री भी बेखबर होगई तो मैं धीरे से बिस्तरे से उठा और उसकी खूंट से संदूक की ताली खोलकर धीरे धीरे उसका बक्स खोला। देखा ऊपर ही मोती की माला, जिसको कि पिता जी ने शायद मेरे ब्याह के समय दो हजार पर लिया था, पड़ी है। झट मैंने उसे निकालकर अपनी जेब के हवाले किया और उसी प्रकार ताला बंद करके ताली अपनी सुशीला की खूंट में बांध सो रहा।

सबेरा होते ही घर के लोग पिता जी के दारु दरबन में लगे पर मैं माला लेकर रँगीले के मकान पर पहुंचा। क्योंकि वह बैठके में अभी तक नहीं आया था। और वहां से उसे साथ ले कई महाजनों के यहां गिरो रखने के लिये पहुंचा। लेकिन मेरा विश्वास न मान और चोरी का माल समझकर सब ने गिरों रखने से इंकारकर दिया। आखिरकार रँगीले अपने एक जान पहिचान के महाजन के यहां ले गया और उसने उस मोती के माले को देख भालकर कहाः—"इसमें तो मुझे भी शुबहा मालूम.........

मैंने बात काटकर कहाः—"शुबहा कैसा? यह तो खास मेरा है।"

उसने बहुत देर तक उसे गौर से देखने के बाद कहाः—

" खैर चाहे किसी का हो पर मैं तो गिरों रखना नहीं चाहता अगर आप बेंचना चाहें तो मैं ले सकता हूं। "

सवेरे से भटकते भटकते इस समय दो बज गये थे। बिना दाना, बिना पानी होने के कारण जैसा कि आज के पहिले कभी भी न हुआ था, मेरी तबीयत घबराई हुई थी। इससे मैंने घबराहट के कारण पूछाः-" कहिये, अगर बेंचे तो कितना देंगे। "

उसने कहाः-" अगर आप बेंचे तो कहें, नहीं तो फिर जबान खाली करने से क्या फायदा ? "

रंगीले ने कहाः-"दाम कहिये। वाजिबी जंचेगा तो बेंच देंगे।"

निदान उसने बहुत तरह से, फिर नये सिर से देख भालकर कहाः-" हम पांच सौ तक दे सकते हैं। "

मेरी तो इच्छा नहीं थी पर जी के घबराने और राजा से परास्त न होने के ख्याल से बहुत कहा सुनी के बाद मैंने उस दो हजार के माल को छः सौ ही पर बेंच डाला। दाम की गिनी और नोट लेकर मैं घर आया। तुरंतही एक झलक दिखाकर फिर नई सड़क के बैठके में जा पहुंचा। पांच बजे तक तो सुलाई होती रही। बाद सब लोग उठे और नहा नहाकर, पुट बदल बदलकर और शामकीन (अंग्रेजी शराब का नाम है) की एक एक घुंट पी पीकर टहलते हुए बाजार की तरफ से चले थे कि इतनें ही में आठ सौके कई नोट लिये हुए छैलबिहारी भी लपका हुआ आया और साथ हो गया। निदान सब मस्तानी चाल से करीब दस कदम के गये होंगे कि राजराजेश्वरी का एक खिदमतगार दौड़ता हुआ आया और सलामकर कहने लगाः-" चलिये आपको बुलाया है। "

मैं,-क्या राजा साहब आ गये।

खिद०। अभी तो नहीं।

उसको साथ लिये और इधर उधर से घुमते हुए लगभग आठ

बजे के सब लोग वहां पहुंचे। सब लोगों का नीचे पहुंचना था कि एक सफरदा आया और कहने लगा कि आपने बड़ी देर की। नहीं तो आपही आगे बैठते और राजा साहब को गरज होती तो सामने आते नहीं तो "मुंहकाला" करके चले जाते।

निदान कुछ उत्तर न देकर मैं बैठके के पासही के एक कमरे में जा बैठा जहां से बैठके की सारी बातें साफ साफ सुनाई पड़ती थीं। राजराजेश्वरी और उस राजा * में पहिले से न मालूम क्या धीरे धीरे बातें होती थीं किन्तु मेरे बैठ जाने पर जो कुछ सुनाई पड़ा नीचे लिखा जाता है।

राजा ने कहाः-"तो फिर बाई जी अब क्यों देर कर रही हो!"

राज०। देखिये साहब, आपका मुजरा हो गया है,-मेरे एक और आदमी मुजरा सुनने के लिये बैठे हुए हैं,-अब उनका होजाने दीजिए। इससे आपसे थोड़ी देर के लिये माफी चाहती हूं। आप अभी थके मांदे आये हैं। क्या ही अच्छा होता कि ऊपर चलकर थोड़ी देर आराम करते।

यह सुनते ही उसका सुर बदल गया। उसने जग रुखाई से जवाब दियाः—"वाह! यह कैसे हो सकता है।"

राज०। साहब! मुझे तो दोनों आदमियों की बातें रखनी है। जैसे आप वैसे वे। मेहरबानी करके कहना मान जाइये।

राजा०। नहीं,-अभी हमी को जब सुनना है तो फिर हम कैसे तुम्हारा कहना मान सकते हैं। वे तो यहीं के रहनेवाले हैं, लौट जायं दूसरे दिन सुन लेंगे।

---

* वास्तव में यह राजा वाजा कोई नहीं था। यह सब उसी की चाल थी। मालदार असामी पा उसे ठगने के लिये रंडियां प्रायः किसी न किसी को साट और अपने पास से रुपया दे उसे बराबरी बैठा देती हैं और दम की दम में हजारों का वारा न्यारा कर देती हैं। यह बात मुझे पीछे की जांच पड़ताल से मालूम हुई।

"लौट जायं" की बात सुनकर मुझे क्रोध चढ़ आया। मैं तमककर उठने चला कि मेरे पास के बैठे हुए छबीले ने (क्योंकि वे दोनों यानी रंगीले और छैलबिहारी ऊपर छान छून रहे थे) मुझे पकड़कर बैठा लिया और धीरे से कहाः–"चुपचाप रहिये, देखिये राजा की कैसी हालत होती है।"

निदान मैं चुप हो रहा फिर राजराजेश्वरी की जबान से यह सुन पड़ाः–"देखिये साहब मैं अभी अभी कह चुकी हूं कि जैसे आप तैसे वे। फिर मेरे सामने उन्हें कुछ न कहिये।

राजा ने कहाः—"फिर मैं तो यों हटनेवाला नहीं। अगर तपाक होतो छूट बाजी हो जावे।

राज०। आप राजा हैं,–मैं आपके पैर की जूती हूं इससे और कुछ न कह इजाजत मंगाती हूं कि फिर बुलाऊं?"

राजा०। हां हां बुलाओ आज यही खिलवाड़ सही।

मैं तो पहिले ही से तेज हुआ था उसके मुंह से ऐसी बात सुनते ही खड़ा हो गया। बुलावे का खिदमतगार आया,–चट मैं छबीले के साथ छैलबिहारी और रंगीले को आवाज दे उसके खोपड़े पर जा धमका। मुझे देखते ही उस नकली राजा की रूह कांप गई। मैंने अपनी नशीली आंखों से उसे घूरा। शकल पर नजर पड़ते ही उसकी असली हालत जाहिर हो गई पर उस समय तो मैं मदसे माता और अंधा हो रहा था। भला मुझे यह बात कैसे मालूम होती। पर इतना जरूर जान पड़ा कि वह मेरे आगे झिपता है।

उसका झिपना कहिये कि मैं और छाती फुलाकर तन बैठा। मुजरा शुरू हुआ। इधर छूट बाजी भी प्रारम्भ हो गई। जब वह दस देता तो मैं पन्द्रह देता। जब वह पन्द्रह देता तो मैं बीस देता। जब वह बीस देता तो मैं पचीस देता। हरबार मैं अपना नम्बर उसके आगे बढ़ाये रहता। यहां तक कि आखिरी छूट २००) रुपये

की हुई। इस रकम के दे चुकने के बाद मेरा जी झन से हो गया। कारण कि अब पास में सिर्फ पांच ही रुपये रह गये थे। मैं मन ही मन ईश्वर को मनाने लगा कि दीनानाथ लाज रख लो। बारे ईश्वरने भी दया की। उसके पास भी कुछ न था। मेरे दो सौ के देते ही वह मेरा मुंह ताकने लगा। उसका चेहरा तो पहिले ही से फक् हो गया था। पर इस हार से तो उसपर मानो सौ घड़ा पानी पड़ गया। उसको अपना मुंह ताकते देख मुझे ढांढस बंधी। साथ ही छबीले ने कान में कहा "हो बीता" मैंने कहा, "हां रंग तो ऐसे ही दिखलाई पड़ते हैं।" यह बात तो राजराजेश्वरी को पहिले ही से मालूम थी। निदान उसने मुझे बढ़ावा देने के लिये उस नकली राजा से कहाः—"कहिये साहब! अब तो खतम न किया जाय या अभी और सिलसिला जारी रहेगा।"

वह बिचारा शरमिंदा तो था ही राजराजेश्वरी के इतना कहने पर और भी पानी हो गया। वह चलने के लिये उठकर खड़ा हो गया। यद्यपि मैंने उसे बहुत रोका परन्तु वह न रुका। और अंतमें चला ही गया। यद्यपि यह सब चालाकी उसी वेश्याकी थी परन्तु वह अपनी सफाई दिखलाने के लिये उसके चले जाने पर उसकी निन्दा करने के साथ ही मुझे अपनी नकली मुहब्बत का ऐसा रंग दिखलाने लगी जो असली से भी बढ़ा हुआ था।

इसी प्रकार बड़ी देरतक मुझसे और राजराजेश्वरी में घुलती रही। वह हंसकर मुझे रिझाती हंसाती और साथियों को खिलखिलाने का मौका देती रही। सच ही है वह ऐसा क्यों न करती? उसे दूनकी क्यों न सूझती, क्योंकि उसने तो चुटकी बजाते ही डेढ़ हजार पैदा किया था। पर सच पूछो तो, सचमुच में मुझे भीतर से दम नहीं थी परन्तु मैं उसके जादूमें ऐसा मोहित होगया था कि मुझे आपसे आपही उसके इशारे पर नाचना और टहाके से दीवाल को

टकराना पड़ता था । मुझे खूब ही रीझा हुआ देखकर उसने भी वह वह हाव भाव तथा मोशन दिखलाये कि उसके आगे अलफ्रेड कम्पनी की प्रसिद्ध एकट्रेस भी मात थी ।

निदान इसी रंग रेलियां में रात के जब दो बजे तो राज-राजेश्वरी ने मुझसे इस ढंग से सोने जाने के लिये छुट्टी मांगी कि मैं कुछ भी न कह सका। मेरे दिल की बात दिलही में रह गई। लाचार मैं चुपचाप वहां से उठा और कोठे के नीचे उतरते ही एक नई आफत में, जिसका मुझे सपने में भी गुमान न था, फंस गया ।

उन्नीसवां रंग ।

मैं अपने कमरे मे पड़ा बेखबर सो रहा था कि एकाएक चेहरे पर गरम पानी की बूदों के गिरने से मेरी नींद टूट गई, आंखे खोलकर देखा कि मेरी स्त्री सिरहाने खड़ी रो रही है,-उसके आंखों से अस्त्रु-धारा प्रवाहित हो रही है। उसकी ऐसी दशा देखकर भी मैंने उससे कुछ पूछने का इरादा न किया कि वह क्यों रो रहीहै। वरन उसकी तरफ आश्चर्य से देखने लगा । मुझे जागा हुआ पा कर वह मेरे पैरों पर सिर रख रोने लगी। जब उसकी रुलाई के थर्मामेटर का पारा धीरे धीरे बढ़ने लगा तो मैंने उसे झिड़क कर कहाः—“ चल हट, दिन भर में जरा आराम से सोने भी आये तो तू ने यह पखंड फैलाया । ”

यह सुनने पर दूर हट और चुप हो जाने की अपेक्षा उसका रोना और भी बढ़ गया और वह सिसक सिसक कर कहने लगीः-“ स्वामी ! प्राणनाथ ! चेतो ! अबतो चेतो, देखो पिताजी (मेरे पिता) अब दिन, प्रति दिन अस्वस्थ्य होते जारहे हैं। उनका समय भी निकट ही दिखलाई पड़ रहा है । माता का भी कोई ठिकाना नहीं दिखलाई पड़ता ।

मैं,-तू मुझे चितौनी देने आई है ?

मेरी स्त्री०। प्राणनाथ ! मैं आपको क्या चितौनी दूंगी। परन्तु (पैर से लिपटकर) प्रार्थना करती हूं कि आप अपनी इन-बुरी आदतों को छोड़ो। मुझपर दया करो,–मेरी रक्षा करने के साथही अपने रोजगार की जड़ न खोखली करो।

अपनी स्त्री के मुंह से सच्ची बातें सुनने से मुझे पश्चाताप होने के बदले ईर्षा होगई कि, " मेंढ़ुकी भी नाल बंधाने चली। " यह भी मुझे शिक्षा देने आई। इससे मैंने जरा गर्म होकर और उठकर पूछा " मालूम होता है कि माता के साथ साथ तू भी दीवानी हुई जा रही है। अरे बेवकूफ मैं भला रोजगार की जड़ क्या खुखली कर रहा हूं। क्या किसी ने अपने से भी अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी है ? "

मे० स्त्री०। नाथ ! यह सारा शरीर और प्राण आपका है, आपके साथही यह भी मर मिटने को आया है। इससे आपको अधिकार है कि आप इसे पगली या जो कुछ चाहे बनावें। परन्तु प्यारे ! यह सिर्फ मेरी राय नहीं बल्कि बहुत से लोगों का कहना है कि आप बेश्वावों के पीछे अपने आप से पैर में कुल्हाड़ी मार और सारी सम्पति को चौपट कर रहे हैं।

यह सुनने से लज्जित होने की अपेक्षा मेरे मिजाज में और गर्मी आ गई और मैंने तपाक से कहाः–" कौन कहता है कि मैं अपने पैर में कुल्हाड़ी मार रहा हूं। "

मे० स्त्री०। नाथ ! मैं यदि मर्द होती तो लोगों को बुलाती और साक्षी दिलावाती। परन्तु स्वामी आप अपने सच्चे दिल से पूछें कि क्या मैं झूठ कह रही हूं।

मैं,–" बेशक। तू सरासर झूठ कह रही है। वाह देखो " जूयें को भी खजुली होने लगी। " जिसके बापको बोलने तक का सऊर नहीं उसकी लड़की भी शिक्षा देने चली। किसको ? मुझको, मुझको। भला बता तो सही कि मैं क्या अपने पैर में अपने

से कुल्हाड़ी मार रहा हूं, रोजगार की जड़ क्या खोखली कर रहाहूं।

धीरे धीरे मेरा क्रोध बहुत बढ़ गया। मेरा मिजाज बिगड़ा देख मेरी स्त्री चुप हो गई। और मैंने उसे बहुत भला बुरा सुनाने के उपरांत डपट कर कहा;—“ बोल! बोल! हरामजादी! बोलती भी नहीं कि मैं कौनसा बुरा काम कर रहा हूं।”

कहावत सच्च है कि “ मछली को भी पिता होती है।” आदमी चाहे कितनाहू गमखोर सहनशील और संतोषी क्यों न हो परन्तु उसे भी बेकसूर होने के दावे से कुछ कहने की हिम्मत हो जाती है। सत्य उसके दिलमें बेडरी का जोश उत्पन्न कर उसे कहने और अपनी सचाई जाहिर करने का साहस दिलाती है। वह तो चुपचाप आंसु पोंछ पोंछ कर सिसक रही थी। पर जब मैं उसे बोलने केलिये बहुत भला बुरा सुनाने लगा तो उससे भी रहा न गया। उसे भी कुछ जोश आगया जिसमें उसके मुंह से यह सच्ची बात निकल गई:—“ क्या आपने रजिस्टरी नही लेली है! क्या उसे लेकर आपने अपने पैर में कुल्हाड़ी नहीं मारी? क्या उसे लेकर साढ़े तीस हजार पर पानी नहीं फेरा? क्या उसके लेने से बाबा को इतना धक्का नहीं पहुंचा कि वे मृत्युशय्या पर पड़े हुए हैं।”

यद्यपि ये सब सवाल सच्च और वास्तविक थे परन्तु इतना सुनने के साथही मैं अधीर होगया और गलाफाड़कर बोला:-“झूठ! सब झूठ! एकदम झूठ!!! भला मैं साढ़ेतीसहजार पर पानी क्यों फेरने लगा? जिसका बाकी होगा वह तो लेवेहीगा।”

मुझे बिगड़ा हुआ देखकर वह विचारी जारजार रोनेलगी। मैं उसके रोने पर तरस खाने की अपेक्षा और गरजने लगा। रात की सन्नाटे से सन्नाटा हुआ सारा कमरा मेरी गरज से गूंजने लगा। मैंने उसे गाली देकर पूछा:—“ दरिद्र की लड़की! आज तूने मुझे चोर बनाया है। देख मैं तेरी कैसी दुर्गति बनाता हूं।”

यह कह मैं चारपाई से उठ खड़ा हो गया। मेरे खड़ा होतेही विचारी मेरे पैरों से लिपट गई और कहने लगीः-" नाथ ! निस-न्देह यह दासी एक दरिद्र की लड़की है। परन्तु प्राणप्रिये, दरिद्र होने पर भी दासी के हृदय में पतिभक्ति, पति सेवा और उसकी आज्ञाओं को पालन करने का वही आदर्श बना हुआ है जो बहुधा धनाढ्य कुल की स्त्रियों में भी नहीं पाया जाता। जीवनपति ! तुम्हीं इस दासी के सर्वस्व हो। इसको तुम्हारे दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होना है। जो कुछ इसने प्रार्थना की है वह मंगलकामना की इच्छा से की है। यदि रजिस्टरी ....

" बस चुप रह, हट दूर हो " गरजकर मैंने कहा और इतनी जोर से अपना वह पैर, जिसपर वह अपना सिर टेके हुए थी झटकारा कि वह दूर जा गिरी। उसके गिरने से इतनी तेज आवाज हुई कि सारा कमरा गूंज उठा। साथही मेरे कमरे का उंठगा हुआ किवाड़ खुला। देखा सामने माता खड़ी हैं। उनका चेहरा सूखा हुआ है आंखोंमे आंसु भरा है। उन्होंने मेरे पास आकर कहाः- " बेटा ! यह क्या करते हो (आंसू पोंछकर) देखो तुम्हारा बाप बिस्तरे पर पड़ा है और तुम.... ....

इसके बाद माताके मुंह से कोई आवाज न निकली। उनका गला भर आया। वे आंखें पोंछती हुई मेरी सती साध्वी स्त्री की तरफ मुडी और उसे किसी न किसी प्रकार अपने कमरे में ले गई इधर मैं रंग विरंगी ख्यालातोंमें पड़ि विस्तर पर करवट बदलनेलगा।

बीसवां रंग।

मैं पहिले किसी बयान में लिख आया हूं कि पिता की नाम-वरी और उनकी मान मर्यादा के कारण मुझे थानेदार साहब क्या थाने के सभी लोग बहुत मानते थे। जब कभी सामना हो जाता

बड़ी गर्मजोशी से सलाम वलेक होता और वे लोग बड़े खातिर भाव से पेश आते। मुझे उनके इस नकली दोस्ती का बड़ा तपाक था और मैं समझता था कि जब कभी काम पड़ेगा तब मेरी ही चाली होगी मैं तो इसी ख्याल में पगा हुआ था। पर जमाने ने वहां दूसराही रंग दिखलाया। पुलिस की दोस्ती और "सांपके पालने" का किस्सा एकही है। जिस प्रकार पलुआ सांप भी चाहे उसका किसी प्रकार से लालन पालन क्यों न किया जावे, मौका आने (दबने पर) काटने से बाज नहीं आता उसी प्रकार चाहे किसी पुलिस वाले से तुम्हारी खूब क्यों न छनती हो,-चाहे तुम उसकी और वह तुम्हारी दांत काटी क्यों न खाता हो,-चाहे उससे तुम्हारी कैसीही सच्ची दोस्ती क्यों न हो पर मौका आने पर वह अपनी कार्रवाई से कभी भी बाज न आवेगा। जिस प्रकार पलुआ सांप हिलमिल जाने से अपने मालिक का हाल चाल (स्वभाव) जानलेने के कारण तुरंत चिमट जाने से नहीं डरता उसी प्रकार दोस्त पुलिस अपने मित्र के रग रग से वाकिफ होने के कारण उसे फांसने में नहीं सहमता। मतलब यह कि दोस्त पुलिस और विषैले पलुये सांप में यदि भेद भाव न भी माना जाय तो कोई हर्ज नहीं हो सकता।

तमाम तमाशबीन बारह बजजाने के बाद कोठे से छिपे तौर उतर कभी कभी आगे नहीं तो विशेषतः पीछे ही के दरवाजे से दुम झाड़ निकल जाते हैं परन्तु मैं उनकी दोस्ती होने के कारण शेखी में फूला रहता और अपने दोस्त यारों को भी बढ़ावा दिया करता पर उस दिन (जिसका बयान अट्ठारवें परिच्छेद में किया गया है) मेरी तमाम शेखी जाती रही और उनकी दोस्तीका सारा घंमड उसीदिन मिट्टी में मिलगया।

तमाशबिनी में मैं मशहूर ही हो गया था और रुपया भी पानी की तरह बहाता था धीरे धीरे सब रंडियों तथा सफरदाओं को यह विदित

हो ही गया था। आप लोग जानते ही हैं कि तमाम सफरदा क्या बुरे पेश वाले सदा पुलिसवालों के हाथ में रहते ही हैं। इससे वे अपनी बातें उनसे नहीं छिपा सकते। निदान मेरी ऐयाशी की बातें भी उन्हीं सफरदाओं के जरिये उस नाके के चपरासी को कई दिनों से मालूम हो गई थीं क्योंकि जब मैं उसकी तरफ से गुजरता तो वह भर नजर मुझे घूरता। पर शायद वह थानेदार से बात चीत रहने के कारण कोई कार्रवाई एकाएक अकेले न कर सकता रहा होगा। इससे उसने और दो सिपाहियों तथा उस हल्के के जमादार को, जो मेरा बड़ा दोस्त था,-साटा और ज्योंही मैं राजराजेश्वरी के कोठे से उतर साथियों के साथ जरा आगे बढ़ा त्योंही तीनो सिपाहियों ने उन तीनों को और जमादार ने मेरी कलाई पकड़ ली। पकड़ने के साथही जो उन सभों ने कुछ कहा तो लगे तीनों रंगीले छबीले और छैलबिहारी की खातिर तवाजह करने। उनका मारा जाना मुझसे देखा न गया और मैंने जमादार से कहाः-"देखो यार,-देखो न? जरा हाथ तो छोड़ो।

छोड़ने की कौन कहे उसने और भी जोर से पकड़लिया और कहाः-" बस चुप रहो कि .... — "

अपने दोस्त जमादार की बातें सुन और चाल देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मैंने हंसकर कहाः-" अरे दोस्त! आज कैसी बातें करते हो। जरा हाथ छोड़ो,-बिचारों पर मार पड़ रही है।"

उसने आंखे निकाल कर कहाः—" तुम्हारे दोस्त गये अपनी मां की चूत में। चुपचाप खड़ेरहो। नहीं तो अगर तुम्हारी भी कुछ तबीयत हो तैसी कहो।"

यह सुनते ही मेरा माथा ठनका। अब मेरी समझ में उसकी असली मंशा आई। पर इतना जानने पर भी मैंने समझा कि शायद यह दिल्लगीकर रहा है। मैंने हंसकर पूछाः-" तो मुझे क्या

किसी और रंडी के यहां ले चलोगे । यार आजतो ऐसी रुखाई दिखला रहे हो कि मानो कभी की जान ही पाहचान नहीं है । और मैं बिलकुल अजनबी हूं ।

जमा० । देखो जी (मेरा नाम लेकर) यह वक्त दिल्लगीका नहीं है । जान पाहिचान के लिये क्या मैं अपनी नौकरी से हाथ धोऊं ।

अब मैं उसका असली तत्व समझ गया कि वह मुझे थाने, में लेजाकर चालान करेगा। यह ख्याल आतेही मैं सोंच में पड़गया कि इतनें में वे सिपाही भी पास आगये और एक जो मेरा कुछ जान पहिचान था, कहने लगाः—

" अफसोस पुलिस की नौकरी बड़ी बुरी होती है । देखो आज दोस्तों के साथ भी ऐसी काररवाई करनी पड़ी है। (एक अफसर का नाम ले और उसे गालीदेकर) उन ससुर को जवान हिलाते क्या लगती है। छोटी सी जबान हिला दिया। यहां तो इतनी मुश्किल पड़ी है । (हम लोगों से) चलिये साहब चलिये । अब थाने में चालिये ।

मौका बड़ा टेढ़ा आन पड़ा था। यदि कोई अनजान जमादार होता तो उससे कुछ लेन देन की बात कर छुटकारा का रास्ता निकालता। पर यहांतो सहम थी—मारे सहम के लेने देने की बातभी नहीं कही जासकती थी और फिर रह रह कर यह ख्याल होता कि यह मुझसे क्या लेंगे। जब कोई अफसर कह गया है तभी इन लोगों ने पकड़ा भी है।

निदान, मैं अपने तीनो दोस्तों के साथ पुलिस की हिरासत में थाने को चला। एकबार मैंने दोस्ताने तौरसे जमादार से कहा, यार मुझे तो छोड़ दो। पर उसने कहा नहीं भाई हम नहीं छोड़ सकते क्योंकि अभी कोतवाल साहब इधरहीसे गश्त में गये हैं। उन्हीं के हुक्म से आज इतनी बेमुरव्वती करनी पड़ी है।

लाचार मैं थाने में पंहुचा।

आप लोगो में मालूम ही है कि थाने के सभी लोग मेरे दोस्त हैं। इसमें मैंने रास्ते में अपने दिल में सोंचा कि यदि यह नहीं छोड़ता है तो थाने में चलकर छुटकारा मिल ही जायगी। पर यहां आने पर भी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। क्योंकि मुझे देखते ही " आंखें चार होती हैं तो मुरव्वत आही जाती है। " वाली कहावत के डर से मुंशी ने भी अपनी गरदन नीची कर और आखों को रजिस्टर से ऐसा सटा दिया कि मेरी तरफ कनअंखियों से भी न देखा। जमादार ने उनके सामने पहुंचकर कहा कि,-मुंशी जी ये अभी तक मुजरा सुना रहे थे इससे धर लाया हूं चालान कर दिजिये।

जमादार की बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि मैंने समझा शायद कोतवाल गश्त में आये हों और पकड़ने का हुक्म दे गये हों। परन्तु वहां से भी बचाव की जगह थी क्योंकि वे ऊपर कोठेपर जाकर देख तो आये नहीं थे कि चार आदमी हैं। इसपर मैंने सोंचा शायद नौकरी के डर से वह न छोड़ सकता हो। पर थाने की बात से सारी कलई खुल गई और मैं जान गया कि यही महात्मा इस लीला के कर्ताधर्ता हैं। इधर मैं मनमें इन्हीं बातों को सोंच ही रहा था कि उधर मुंशीजी की कलम चलनें लगी। इधर की भी ऐसी लीला देख मैं थानेदार के पास ऊपर के कमरे में जाने लगा। पर एक सिपाही ने यह कहकर मुझे उनके पास तक जाने न दिया कि वे अभी अभी सोये हैं। लाचार मैं वहीं ज्यों का त्यों खड़ा रहा क्योंकि अभी तक न मुंशी ने और न किसी सिपाही ने, जो इस वक्त के पहिले बड़े खातिरभाव से मिलते बैठाते और बात चीत करते थे, कुछ कहा।

मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है कि चालान लिखते समय वही मुंशीजी सिपाहियों तथा असामी से कई सवालें करते और

पूछते पाछते थे। परन्तु न मुझसे कुछ पूछा गया और न बोलने की जरूरत पड़ी। दम की दम में मुन्शी जी ने सरकारी रजिस्टर को कालाकर जमादार से कहा कि अगर कोई जमानत हो तो लाओ नहीं तो (ताली देकर) गारदमें करदो।

यह सुनतेही मेरा जी सुस्त होगया मैंने अपने जेबमें हाथ डाला फिर रंगीले से हाथ मिलाकर कुछ इशारा किया और चुपचाप दूसरी तरफ को देखने लगा। रंगीले की नजर से मुन्शी की आंख मिलते ही उन्हें मुरौवत आ गई और उसके दबाव में पड़ने के कारण उन्होंने सबसे सौ सौ का मुचलका लिखा छुटकारा दिया और सब लोग अपने अपने घरों को चले गये।

यद्यपि मेरी चारों तरफ से बदनामी हो रही थी पर यह चालान मेरे लिये असह्य होगया। सोने के लिये हजार चेष्टा करने पर भी रातको नींद न आई। सवेरे उठतेही मैं उसकी फिक्र में इधर उधर भटकने लगा। बारे किसी न, किसी प्रकार चालान ले जाने वाले सिपाही को साट कर अपनी जान छुड़ाई और मेरे बदले में उसने एक दूसरे आदमी को साट इजलास पर खड़ा कर और जुर्माना करा मेरी जान बचाई।

इक्कीसवां रंग।

पवित्र-तीर्थ स्थान काशीपुरी में जिस प्रकार भंडर लोग एक झँपोलेदार बहंगी में अनेक शीशियों में अनेक तीर्थ स्थानों के नाम से जलभर नाना प्रकार के कौशलों से भोले भाले मुसाफिरों को अपने चंगुल में फंसाने, तथा धोके की टट्टी और अपनी लच्छे दार बातों में बांधकर दुःख दूर करने की आड़में मीठी छुरी से हलाल करने से बाज नहीं आते उसी प्रकार रंडियां भी अपने चाहनेवाले को नाना प्रकार से ठगने से बाज नहीं आतीं। उनसब के हतकंडे भी

ऐसे होते हैं कि विचारे तमाशबीनोंको इस बात का जरा भी पता नहीं चलता कि वे हलाल किये जावेंगे अथवा उन्हें वह अपनी मुहब्बत का प्याला पिलाकर बहाल कर देगी। पर चाहे तमाशबीन उल्टी छुरी द्वारा क्यों न हलाल कर दिया जावे परन्तु वह उस हलाल करने को आंख न खुलने तक अपना सौभाग्य समझता और क्षण क्षण यही आशा किया करता है कि अब मुहब्बत के शरबत का प्याला मिला और पीकर मैं पित्रों सहित बैंकुठ को चला।

जब तमाशबिनी का भूत आदमी के सिरपर सवार होता है तो उसे हरएक बातों में वेश्याओं के सोहबत की आवश्यकता दिखलाई पड़ती है। जिस प्रकार बिना चद्रदेवके सारी रात अँधियारी और कालिमापूर्ण रहती है उसी प्रकार बिना उसकी माशूका के तमाशबीन का सारा रंग मलीन और उसकी महाफिल सुनी रहती है। मतलब यहकि यदि भंग पीने वाला हुआ तो उसने कहा है कि चलो बाईजीके यहां बने और उसीके बहाने खूब छने। इसी प्रकार हरेक चीजों में उसे उसी बाराङ्गना की आवश्यकता दिखाई पड़ती है। इधर रंडिया भी जरा जरा से कामों में भी हाथ साफ किये बिना नहीं रहतीं।

ऐय्याशी के साथ साथ मुझे दुनियां के सारे प्रकार के शौक ने भी आ दबोचा था। पाहिले मैं ताश खेलना बिलकुल न जानता था परन्तु उस खेलका अब मुझे इतना शौक हो गया कि जहां कहीं पहुंचता वहीं उस नासूड़िये खेल को फैलाता। पाहिले तो योहीं सादगी से खेलता था पर अब कुछ दिनों से बाजी भी लगाने के साथ ही पांच दस हारने जीतने लगा।

रात भर किसी तरह करवट बदला किया। शायदही रातको कुछ देर के लिये नींद आई हो। पर मुझे यहांतक ख्याल है

कि मैंने उस रातको सोया नहीं। यद्यपि अपनी बेकुसूर पतिव्रता को मारने का मुझे गम नहीं था परन्तु सच्च पूछो तो निर्म्मल और शांति-प्रिय आत्मा भीतरही भीतर रो रही थी। और दूसरे सिलसिले को तोड़ तोड़ कर मुझे उसके बेकसूर होने का ख्याल अकसर आ जाया करता था। पवित्र आत्मा के दुःखित होने के कारण मेरी तबीयत उस दिन कहीं भी न लगती थी। मैं नहा धोकर भोजनोपरान्त इधर बैठा, उधर बैठा अपने इस मित्र के यहां गया, उस मित्र के यहां गया पर कहीं भी तबीयत न लगी। हजार चेष्टा करने पर भी वही उदासी, वही रूखापन और वही सन्नाटा! लाचार मैं टहलता हुआ अपने नयी सड़क के बाग में पहुंचा देखा, रंगीले और मकान मालिक के नौकर से बहुत कहा सुनी हो रही है। पूछने पर पता चला कि उसका तीन महीनेका भाड़ा बाकी है यद्यपि मैं महीने महीने भाड़ा दिये जाता था पर उसकी बातों से जान पड़ा कि उसे तीन महीने से नहीं मिला है। मुझे देखकर विचार रंगीले शर्म से छिप गया पर वह नौकर और भी गर्म होने लगा। पाठक अपही समझें! क्या कभी एक सच्चे दोस्तको यह गँवारा होसकता है कि वह अपने एक दूसरे मित्र की बेइज्जती अपनी आंखों से देखे? नहीं कभी नहीं। निदान मुझसे उस नौकर की कड़वी तीखी बातें बरदाश्त न होसकीं। मैंने उसे किसी तरह शाम तक के लिये समझा बुझाकर ठीक किया। इतने ही में दस बजगये और धूप बड़ी तेज जान पड़ने लगी। निदान मैं रंगीले के साथ बात करता हुआ बाजार से चला आ रहा था कि रास्ते में एक आदमी ने पांचसौ के नोट और गिन्नियां दे कहा कि इसे जमा करवा दीजिएगा। वह जल्दी में था और तेजी से कहीं जा रहा था इससे "शामको मिलने को" कहता हुआ तेजी से चला गया। टेट गर्म होने से मुझे दून की सूझने लगी इससे दिल में यह ख्याल पैदा हुआ कि चलो

थोड़ी देर राजराजेश्वरी के यहां बैठ दिल बहलावें। वहां पहुंचकर देखा बाई जी मुंह धोकर और आईने के सामने खड़ी हो चेहरा निहार रही हैं। इस समय बदन पर केवल एक बारीक रेशम की साढ़ी थी जिससे छनकर सारे शरीर का यौवन बाहर फटा पड़ता था। अनुभवशील पाठक मेरे इतना लिखने से ही समझ सकते हैं कि मेरे लिये वह समय कैसा था ! मैं उसके शरीर की सुघड़ता और उससे चूते हुए मद को देख बेताब होगया । साथही मेरे मुंह से निकला " प्यारी ! " उधर राजराजेश्वरी की नजर फिरी कि मैंने उसके हजार हटते रहने पर भी उसके पास पहुंचकर एक बोशा लेही लिया। इसके बाद क्या क्या बातें हुईं सो मुझे स्मरण नहीं। पर हां इतना ख्याल है कि ताश निकले और मैं राजराजेश्वरी के साथ बैठ खेलने लगा। धीरे धीरे करके मैं पहिले उस आदमी के दिये हुए तमाम रुपयों को हार गया और वह भी किसी बहाने से गई और उन रुपयों को रख आई।

जिस समय मैं उसके दिए पांचों सौ रुपयों को हार गया उस समय मेरी तबीयत कुछ सुस्तसी हो गई पर फिर मैंने दिलको ढांढस दिया कि कोई चिंता नहीं अभी पाशा पलटा कि अपने रुपयों को वापस ले लिया। पर अफसोस, मेरी यह ख्यालीखीर निरी-ख्याली ही साबित हुई। सचमुच में थोड़ी देर के बाद जैसा कि मैंने सोचा था मेरा पाशा पलटा और बड़ी मुश्किलों से, क्योंकि वह बहुत कम कम दाव लगाती थी, मैंने राजराजेश्वरी के ऊपर पांच सौ चढ़ा कर बहाने बहाने दिल्लगी में कहा कि, " लाओ बीबी अब चुपचाप मेरे पांच सौ वापस करदो। उसने कहा, बेशक लो पर क्या वह बोशा मुफ्त का थोड़ाही था ? उसका दाम किसी तरह पांच सौ से कम नहीं है। "

बस ! चुपचाप ! यह उत्तर पाते ही मेरे होटों पर टांका चल

गया। फिर मुझ से कुछ कहते न बना। गो दिल भीतर से उदास हो गया। पर क्या करता? यदि उस उदासी को ऊपर जाहिर करता तो बेवकूफ बनता और वह छोटे दिल का कहती। निदान अपने ख्याल को दूसरी तरफ पलट कर और बातों को सोंचने लगा कि इतने में एक आदमी सामने आ खड़ा हुआ। उसकी शकल को देखते ही माथा ठनका और मेरे में इतनी ताब न रही कि राजराजेश्वरी के मकान पर एक मिनट भी ठहर सकता।

बाईसवां रंग

मेरे घर में चारों तरफ हा हा कार मचा हुआ था। माता और मेरी स्त्री के रोने का बयान लिखना बिलकुल बेफायदा है क्योंकि दर दीवार नौकर चाकर सभी रो रहे थे। जिधर आंख उठाकर देखता उधर अश्रु ही धारा बहती दिखलाई पड़ती थी। उस जगह यद्यपि बहुत से लोग थे परन्तु कोई भी ऐसा न दिखलाई पड़ता था जो कि न रोता हो। सबके आंखों से आंसु बर्षा हो रही थी, हृदय-विदारक दृश्य से सबके हृदय खंड खंड हुए जाते थे।

जिस आदमी को देखने से मुझे राजराजेश्वरी के यहां ठहरने की ताब न रही थी वह मेरा खास नौकर था, मेरे सामने पहुंचते ही उसमें कुछ कहने की ताब न रही। उसकी आंखों से झरझर आँसू गिरने लगे। उसकी शक्ल सूरत और उसे इस प्रकार रोते देखकर मैं सारी बातों को समझ गया और बिना कुछ कहे तेजी से उठकर उसके साथ हो, दौड़ा हुआ घर आया।

निसन्देह! मनुष्यों में खूनी-जोश एक विचित्र चीज है। एक परिवार के आदमियों में चाहे कैसी ही जानी दुश्मनी क्यों न हो पर मरने के समय खूनी जोश उसे रुलाये बिना नहीं छोड़ती। उस हृदय-विदारक दृश्य और अंत में अपनी भी वैसी ही दशा होनी

निश्चित जानकर आदमी का दिल पानी २ हो जाता है और उस समय वह सारी बुराइयों,—सारे ऐबों और सारी बातों को भूलकर उसके दुःख से दुःखित हो जाता है।

जिस समय मैं घर पहुंचा उस समय पिता की बहुत ही निकृष्टावस्था होगई थी। उनकी आवाज़ बिलकुल ही बैठ गई थी। अंतिम समय के कफ ने आक्रमण कर उनकी आवाज को सायं सायं से परिवर्तित कर दिया था। पर ईश्वर की कृपा से अभी तक वे धीरे धीरे बोल रहे थे। मैं भी रोता हुआ उनके पास जा पहुंचा। माता ने आने की सूचना दी। उन्होंने पहिले तो बड़ी नफरत से मेरी तरफ देखा पर दोही तीन मिनट बाद उन्होंने इशारे से मुझे पास बुलाया और फिर यों कहना प्रारम्भ किया:—"बेटा! बेटा! देखो तुम्हारी ही करनी से आज मेरी ऐसी दुरावस्था हो रही है,-यद्यपि आदमी अपनी मौत से मरता है,-परन्तु अंतिम समय के इस दुःख के कारण तुम्हीं हो। तुम्हीं ने मुझे दरिद्र किया, तुम्हीं ने मुझे इस दशा को पहुँचाया,-तुम्हारे ही कारण मरते दम भी मुझे शोक को साथ ले जाना पड़ता है। बेटा अब भी चेतो, अब अपनी कुचाल को छोड़ो औ ....।"

इसके बाद उनकी आवाज रुक गई। साथ ही हुंटकी भी आने लगी। उपस्थितों ने उनके अंतिम घड़ी को देख झट् उन्हें चारपाई से नीचे उतार दिया। अभी तक मैं चुचचाप खड़ा भीनी हुई आंखों से आंसु बहाता हुआ एक टक उनके चेहरे की तरफ देख रहा था। लोगों का उन्हें चारपाई से उतारना था किं वे मुझे बड़े तेजी से घूरने लगे। उनकी आंखों ने इस समय ऐसी भयानक रूप धारण की कि एकाएक मेरा दिल कांप उठा। मुझ में उस तरफ ताकने की हिम्मत न रही। मैं चुपचाप नीचे की तरफ देखने लगा। आज उस घूरने का मतलब कुछ कुछ समझ में आता

है। शायद उनकी आत्मा को मुझपर विश्वास नहीं हुआ। अपनी सिखावनोंको विफल जानकर अंत में उन्होंने मुझे उसी घृणा और कोप की दृष्टि से देखा था जैसा कि वे पहिले देखते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य मात्र की आत्मा बिलकुल एक कलइदार आयना है। इसे जितना ही साफ रखो उतना ही यह दर्पण का काम देती है और इसमें भूत और भविष्य का सारा हाल मालूम हो जाता है।

पिताजी को चारपाई से उतारना था कि रोना धोना और भी बढ़ गया। लोग छाती पीट पीटकर हाय-हाय करने लगे। जमीन पर पिताजी शायद ही दो मिनट रहे होंगे कि उनको तेजी से एक हुंटकी आई और उनका प्राणपखेरू शरीरपींजरे को छोड़ निकल गया। उधर उनका दम निकलना कहिये कि इधर माता जी के मुंहसे भी एक चीख निकली। साथ ही सुनाई पड़ाः–"प्राणपति! अकेले कहाँ दासी भी चलती है" इसके बाद वह वहीं गिर पड़ी। लोगों ने समझा कि उन्हें मुर्च्छा होगई है। पर नहीं, वे भी मुझे अनाथ कर पिताजी के साथ ही चल बसीं।

तेईसवां रंग

किया कर्म इत्यादि की बातें लिखकर मैं अपने पाठकों की दिलचस्पी को नष्ट नहीं किया चाहता इससे इन सब बातों को यहां छोड़ सिलसिले की तरफ बढ़ता हूं।

माता पिता के मरने से मेरे दिलपर इतना धक्का पहुंचा जो अवर्णनीय है। चित्त की चंचलता चोट के कारण बिलकुल जाती रही तबीयत ऐसी उदास और खिन्न होगई कि कहीं जी न लगता। किसी से बोलने की जरा भी इच्छा न होती और न कहीं जाने को जी चाहता। एक एक करके पिता के तमाम मिलने वाले और मेरे यार दोस्त भी आये,–सब लोगोंने मुझे अनेक प्रकार के उपदेश दिये,

रंग बिरंगी सिखावनें दीं, किसी ने पिता की इज्जत समझाई,-किसी ने उनकी मर्यादा बताई और किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ। मतलब यह कि बहुत लोग आये और नसीहत दे दे कर चले गये।

लगभग एक महीने तक इसी प्रकार भीड़ भाड़ रही। इसके बाद मैं दिल की घबराहट के कारण अपने मित्र श्यामलाल के बाग में चला गया और दिनभर वहीं पड़ा रहने और रात रात को घर आने लगा। एक दिन लगभग नौबजे के करीब ज्योंहीं मैं कमरे से निकला देखा,-सामने से मेरे लम्पट मित्रों के साथ राजराजेश्वरी मुस्कुराती चली आ रही है। उसे देख मेरे दिल में कुछ गुदगुदीसी पैदा हो गई। जरा जरा होटों पर मुस्कुराहट के आसार प्रगट हुये। मैं चुपचाप वहीं खड़ा रहा। आतेही उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर मैं उसके साथ आगे आगे और तीनों लम्पट साथी पीछे पीछे कमरे में गये। सब ने एक एक करके कुर्सियों पर अपना डेरा जमाया। तबीयत मलीन रहने पर भी वहां बाईजी के खातिर तवाजह में किसी प्रकार की कमी न हुई।

इसके बाद बातचीत होने लगी। बहुत देर तक उसने मेरे दुःख से सहानिभूति दिखलाई। फिर मौका देखकर उसने समझाना प्रारम्भ किया:-" क्या कीजियेगा। अफ़सोस करना तो हर हालत में बेजां हैं। मगर फिर भी चाहे कैसाहू कड़ा दिल का आदमी क्यों न हो, ये सब मौके ऐसे हैं कि दिल पर सख्त सदमा पहुंच ही जाता है ताहम आपतो खुदही समझदार हैं........।

रँगीले ने उसकी बात काट कर कहा: -" जी हां। इस में कोई वश नहीं है।"

राज०। और आप जानते हैं कि यह संसार नश्वर है। इसमें जो आया है वह एक दिन जरूरही मरेगा। नाशवान चीजों के मिट्टी में मिलजाने का रंज बिलकुल बेफायदा है।

मतलब यह कि इसी प्रकार वह बहुत देर तक समझाती और सब लोगों में बात चीत होती रही । राजराजेश्वरी के साथ वार्तालाप करने से मेरे दिल की उदासी कुछ कम होने लगी, अफसोस का बादल उसके रसीले बचन पवन से आस्मान दिल से धीरे धीरे हटने लगा । वह मुझे इसी प्रकार धीरे धीरे रिझा रही थी कि उसका एक नौकर सामने आकर खड़ा होगया । नजर उठाकर देखा उसके एक हाथ में किसी लाल चीज के रस से भरी हुई एक बोतल और छोटे छोटे शीशे के दो गिलास हैं । उसे खड़ा होते ही राजराजेश्वरी ने मेरी जबान से आवाज निकलते निकलते उसके हाथ से वह बोतल और गिलास ले लिया और कहाः-"यह अमृतधारा है । इस के पीने से तमाम शोक और दुःख दूर होजाता है ।"

जो कुछ वह था । उसे मैं ताड़ गया और सोंचने लगा कि क्या करना चाहिये । मैं अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाया था कि उसने उसे एक गिलास में उँड़ेला और एक हाथ से गिलास मेरे मुंह में लगा दिया और दूसरा हाथ गले में डाल कहाः—" लो प्यारे ! इसे पीओ, छिः छिः जरा आइने में तो देखो तुम्हारी सूरत कैसी होगई है ।"

इस समय यदि कोई आशिक़ मिजाज सामने होता तो वह मेरे पाठकों को मेरे दिल के उस समय का हाल बतलाता । पाठकों में से वही लोग उस समय के वास्तिव दशा को जान सकते हैं जिन-को कभी ऐसे मामले में फँसना पड़ा होगा । लाचार मुझसे कुछ कहते न बन पड़ा । मैंने बहुत चाहा कि जरासा पी और राजराजेश्वरी की खातिर कर दूर हो जायँ । पर ऐसा न हो सका । धीरे धीरे करके मैंने शायद वैसेही तीन गिलास खाली कर डाले । फिर तो जब जरा सरूर आया तो साथियों और राजराजेश्वरी को भी भर भरकर पिलाने तथा स्वयं पीने लगा ।

जब मुझे पूरी तरह से नशा हो आया तो राजराजेश्वरी भी नाना प्रकार से अपनी मुहब्बत दिखा दिखा मुझे ज़ीते दर गोर करने लगी। इसके बाद मैं आपे में न रहा और मतवाला होकर राजराजेश्वरी का हाथ पकड़ उठ खड़ा हुआ। हवा लगने से नशा ने और भी जोर बांधा तत्पश्चात् मुझे दीनदुनियां की होश न रही कि क्या हुआ और क्या नहीं।

चौबीसवां रंग।

रात भर में राजराजेश्वरी के यहां बेखबर पड़ा रहा। सबेरे के समय उसने मुझे जगाया। चलने की तैयारी देख पहिले तो वह मुझे आने नहीं देती थी पर बड़ी बड़ी मुश्किलों से कसम पर कसम के लेने पर उसने मुझे आने की आज्ञा दी। मैं घर आया इधर उधर किया; और दो पहर के भोजनोपरान्त फिर वहीं जा पहुंचा। खबर पाकर तीनों साथी भी आ गये और चारों आदमियों में खूब छनने लगी।

धीरे धीरे करके राजराजेश्वरी ने मेरी नकेल अपने हाथों में ऐसी कर ली यानी मुझ पर अपना जादू ऐसा जगा दिया कि मैं उसका बेदाम का गुलाम हो गया। उसे छोड़कर चौबीस घंटे में शायदही चार पांच घंटे बाहर तथा घर रहता, नहीं तो जब देखो तब उसी के मकान की मिट्टी फांकता रहता। यद्यपि मेरी पतिव्रता स्त्री ने कईबार मेरे पैरों पड़ पड़ मिन्नत की किंतु मैंने उसकी प्रार्थनाओं पर जरा भी ध्यान न दिया। शायद उसकी बिनतियों पर उसे दो तीन बार मैंने डांट भी बतलाई थी इससे उसने उसी दिन से कहना छोड़ दिया। किंतु मेरे इस बुरी चाल से उसे बड़ा दुःख हुआ। जब देखो तब उसके आंखों में आंसुही दिखलाई पड़ते, सारे दिन उसके रोते ही जाते थे। पर इतना होने पर भी उसके पतिसेवा में,—उसकी पतिभक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। जब

कभी मैं घर आता, तभी वह सारे कामों को छोड़ कर मेरे पास दौड़ आती । पानी पिलाती, भोजन कराती और बड़े प्रसन्न चित्त से मेरी सेवा करती। ओफ ! जिस समय मैं उसकी सेवाओं को सोंचता हूं, उस समय छाती फट जाती है कलेजा जलने लग जाता है। हृदय की धधकती हुई आग इतनी प्रबल हो जाती है कि चैन नहीं मिलता है। देव ! आत्मा को शांति दो, हृदय में अपनी भक्ति दो जिससे यह पापमय मंदिर में इस अंतिम समय में शांति स्थापन हो सके ।

ऊपर लिख चुका हूं कि राजराजेश्वरी की जादू में मेरी वैसेही हालत हो गई थी जैसे मदारियों के बंदर और बकरे की होती है। यद्यपि मैं उसपर इतना आशक्त और मरता था। और अब इसके बिना एक घड़ी भी रहना मुश्किल हो जाता था परन्तु उसे मुझ से सच्ची मुहब्बत न थी । गो वह मेरे रहते किसी दूसरे से बातें न करती, अब मुजरा वगैरह के लिये टकटकी न लगाती थी तथापि उस के दिल में प्रत्येक समय वही झूठी मुहब्बत, बनावटी प्रेम, दिखौवा, आदर भाव और नकली बैचैनी के साथ साथ रुपया ऐंठने के हथकंडे इत्यादि रहतें जैसा कि हरएक रंडियों को उनकी नायिकायें तालीम देती हैं ।

दुकान का सारा काम काज पूर्ववत, मुनीमजी चला रहे थे। जब कभी मेरी इच्छा होती तो मैं जाता आध या पाव घंटा वहां बैठता नहीं तो तुरंत उठ चला आता । यद्यपि दुकान का काम काज चला जाता था पर उसमें अब वह रौनक न रही थी । पिता के सामने जो उनके प्रतिद्वन्द्वि दबे रहते थे आज वे धीरे धीरे जमने लगे। यद्यपि चारों तरफ का प्रकाश कम हो रहा था। परन्तु मुझे कुछ भी सुझाई न देता था। मैं दिन रात अपने ऐशो-आराम में फूला रहता और दिन दिन भीतरही भीतर लक्ष्मी हीन

हुआ जाता था। यद्यपि हमने उन चांडाल महाजनों से पिता के ही समय तक के लिए रुपये लिये थे, और उनसे अपना अधिकार होते ही देने का वादा किया था। परन्तु उन सभों ने, बेईमान होने के कारण, अभी तक तकाजा न किया और न मैंने अपने मनसे रुपयाही दिया। सच है, देता भी कैसे ? मिनट मिनट पर तो बाई जी की फ़रमाइशें पूरी करनी पड़ती थीं,—दम दम पर उनकी चीजों के लिये रुपये फेंकने पड़ते थे। कोई दिन ऐसा खाली न जाता था कि जिस दिन सौ दो सौ राजराजेश्वरी को देने या उसके लिये खर्चने न पड़ते रहे हों। इतना मेरे करते रहने पर भी नीचे लिखी एक घटना हो गई।

एक दिन वह मुझ से कहे सुने बिना कहीं नाच में चली गई ! जब मैं संध्या को उसके कोठे पर पहुंचा तो रोशनी दिखलाई न पड़ी। बड़े ताज्जुब के साथ घरके भीतर मैंने पैर रखा और देखा,—सारे कमरों में ताला बंद है और मकान में कोई भी नहीं है। फिर मैंने खिदमतगार की कोठरी को देखा और उसे खुला पा उसके पास पहुंचकर पूछाः—"आज ताला क्यों बंद है ?"

नौक०। (सलाम कर) वे नाच में गई हैं।

मैं,—नाच में कहां गई हैं ?

नौक०। मुझे तो मालूम नहीं ! किसी राजा के यहां का एक आदमी आया था वही उन्हें लिवा ले गया है।

मैं,—क्या तुम्हें इसका पता नहीं कि कब आवेंगी और कहां गई हैं ?

नौक०। जी नहीं। हमेशा जब कहीं जाती थीं तो कह जाती थीं। आज तो न उन्हों ने कहा और न किसी से बतलाया। मैं तो बाजार को गया था। आया तो सामने वाले तमोली से मालूम हुआ कि कहीं नाच में गई हैं और उसीसे इस कोठरी की ताली भी मिली है।

नौकर के इस उत्तर से मेरे दिलमें सख्त बेचैनी पैदा हुई। कहां जाता ? कहीं तबीयत लगतीही न थी। आज नियम के विरुद्ध साथियों में से भी कोई न मिला। लाचार इधर उधर भटकता हुआ साढ़े नौही बजे घर वापस आगया और चुपचाप अपने कमेरे में मारे रंज के खाये पीये बिनाही पड़ रहा।

तमाम गृहस्थों के घर का कायदा है कि उनके घरमें एक न एक औरतें आयाही जाया करती हैं। तिसपर खास कर ऐसे घरों म जिस्में कोई पुरनियां न हो। मेरे अनुभव के अनुसार ज्यादा औरतें आती हैं। मसल मशहूर है कि "बने बने के सब कोई साथी" इतनेही से मेरे अनुभवशील पाठक मेरे कहनेका तात्पर्य समझ गये होंगे। मेरे घर में नित् एक न एक औरतें आतीं और बैठ बैठ कर वार्तालाप करतीं। कोई मेरे माता पिता के मरने पर दुःख प्रकाश कर उनका गुणकीर्तन कर आंखें डबाडबातीं, कोई उनका गुणावली गा गा कर लुभाती, कोई मेरी बदचलनी का अहवाल कह कह कर मेरी नासमझी बयान करने के साथही मेरी स्त्रीके दुःख से सहनिभूति दिखलातीं।

मतलब कि जितनी औरतें आतीं सब उतने किस्म का रोना रोतीं। और हरेक चलती समय अपनी अपनी राय देदिया करतीं। पर सच है,—जिस प्रकार चन्दन के वृक्षपर सांपोंके लिपटे रहने से भी उनका उसपर कुछ असर नहीं होता उसी प्रकार मेरी पतिव्रता स्त्रीके ऊपर भी उनकी सिखावनों का जरा भी असर न पड़ता।

रातके साढ़े नौ बजे मैं चुपचाप आया और कमेरे में जा पड़ रहा। पर इसकी घरवालों कों जराभी खबर न हुई क्योंकि मकान का सदर दरवाजा प्रायः रातके दस बजे तक खुला रहता था। क्योंकि मेरे मुनीम ठीक साढ़े नौ बजे दुकान बढ़ाते और घर आकर मेरी स्त्री

को बिक्री इत्यादि दे जाते थे।

ज्योंही मैंने जाकर अपने कमरे में डेरा जमाया है त्योंहीं रामा रामा (यह मेरी स्त्रीका नाम था) कहती हुई मेरे पड़ोस की एक औरत घरमें आई । और उसने मेरी स्त्रीसे कहा कि, बचवा दियासलाई दो,–घरमें चारोंतरफ अंधेरा छा रहा है। मेरी स्त्री दयावान भी बड़ी थी। वह पड़ोसवालों को बहुत मानती थी। जो कभी किसी चीज को मांगते, रहते वह देने से मुंह न फेरती।

मेरी स्त्री ने तुरंत उसको सलाई की पेंटी देदी। पर वह तुरंत लौट जाने के बदले वहीं बैठ गयी और इधर उधर की बातों के साथही मेरी बात भी छेड़कर बोली:–" बेटी तुम्हारी तक़दीर फूट गयी कि तुम्हारा आदमी ऐसा निकला। हाय ! तुम्हारे हाल पर बड़ा तरस आता है।"

यह सुनकर मेरी स्त्री गौर में पड़ गई और कुछ न बोली। उसने फिर कहा:–"बेटा ! क्या वे कभी भी घर नहीं रहते।"

मेरी स्त्री ने उत्तर दिया:–"क्यों नहीं रहते। जब उनकी तबीअयत में आती है तब रहते हैं। मैं तो उन्हींके सुखसे सुखी हूं। जिस प्रकार उन्हें आराम मिले उसी में मुझको भी आराम है।"

पड़ोसिनने कहा:–"बेटा ! इस दुनियां की सारी नियामतों के होते हुए भी पति का दुःख बहुत दुःखी करने वाला होता ....

मेरी स्त्री,–(बातकाटकर) हाँ तुम्हारा कहना सच्च है किन्तु माता मुझे जरा भी दुःख नहीं है।

पड़ो०। बेटा ! चाहे तुम कितना हूं छिपाओ पर देखो तुम्हारा चेहरा तुम्हारे दुःख की गवाही दे रहा।

यह सुनकर मेरी स्त्री का दिल उमड़ आया। उसके आंखों में आंसु भर आये और वह बह बह कर धीरे २ गालोंपर आने लगे। उसकी ऐसी दशा देखकर पड़ोसिन ने कहा:–"बेटा इस मर्ज की दवा करो"

मे० स्त्री०। माता यह मर्ज ला इलाज है।

पड़ो ०। ला इलाज नहीं है। इसकी बहुत सी दवायें हैं। देखो अहमदशाई ने गोपालकी स्त्री को कैसी अच्छी तावीज़ दी की उसका आदमी उसके तावे में हो गया।

मे० स्त्री०। माता! यह सब संसारकि प्रपंच है। कहती क्या हो। यदि शाईजी ऐसेही होते तो जंगल में जा बैठते। भला तुम्हीं बतलाओ किसी महात्मा ने भी शहर में डेरा जमाया है!

पड़ो०। (बात काटकर) तो फ़िर किसी देवी देवता ही की मिन्नत मानो।

मे० स्त्री०। इस कलयुगी समय में स्त्रियों के लिये पति-सेवा और पतिभक्ति ही एक ऐसा अमूल्य पदार्थ बनाया गया है जिसका व्रत करने से सारी दुनियाँ के देवी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जबतक पति है तब तक किसी के पूजनपाठ की जरा भी आवश्यकता नहीं है। इस कलयुगी समय में पतिसेवाही से स्त्रियों को बैंकुंठ मिलता है। जो स्त्रियां पतिसेवा से विमुख होकर इधर उधर देवताओं के पूजन पाठ के लिये घूमती हैं वह अपने लिये गड्हा खोदती हैं, यद्यपि वे समझती हैं कि पूजा करने से देवी देवता प्रसन्न होंगे,-उन्हें मुक्ति मिलेगी, शरीर शांति और सुख का उपभोग करेगा परन्तु ऐसा करना वैसाही है जैसे "भैंस के आगे बीन बजाना" "अंधे को शीशा दिखाना।"

यह सुनकर पड़ोसिनं के मुंह पर ताला चढ़ गया। उससे कुछ भी कहते न बना। परन्तु यदि पाठक पूछें कि मैंने क्या किया। क्या उसकी बातों और आदेशभक्ति से मेरे हृदय में कुछ असर हुआ तो इस का उत्तर यही है कि जिस प्रकार जंगल में रोना बेफायदा होता है उसी प्रकार उसकी यह आदर्शभक्ति मेरे अंधपने के आगे निष्प्रयोजनीय हुई। मैं चुपचाप पड़ा हुआ सुन रहाथा

कि फिर मेरी स्त्रीका कंठरव सुन पड़ा । वह कहने लगी,–" माता! मेरे लिये इस दुनियां में वही देवी हैं, वही देवता हैं, वही मित्र हैं वही गुरु हैं । मतलब कि मेरे लिये जो कुछ हैं सो वही हैं ।

पड़ो० लेकिन क्या पतिका तुम ऐसी बुद्धिमति पतिभक्ता आदर्शनीके साथ ऐसाही बर्ताव समुचित है ।

मे० स्त्री० । माता ! इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है । यह सब मेरे प्रारब्ध का खेल है । उस जन्म में मैंने जैसा किया है । इस जन्म में वैसा भोग कर रही हूं । आगे जैसा करूँगी वैसा पाऊंगी ।

पड़ोसिन चुपचाप दुम दबाये उठी और अपने घर को चली गई । इतने में दुकान बढ़ाकर मुनीम जी आये और वे भी हिसाब किताब समझा बुझा और बाहरी दरवाजा बंद करवा चले गये । उनके चले जाने के उपरांत मजदूरनी भीतर के कमरों को बंद करती हुई जब मेरे कमरे में आई तो चिल्ला उठीः–" बाहू बहू ! दखो कौन सोया है । "

मैं तो जाग ही रहा था । परन्तु उसके आने की आहट पा मुंह ढंप ऐसा पड़ रहा मानो जैसे कोई सो रहा हो । निदान मेरी स्त्री मेरे कमरे में आई और मुझे सोया पा उसी प्रकार सेवासुश्रुषा में तत्पर हुई जैसा कि एक आदर्श पतिव्रता कुलीन स्त्रीको चाहिये ।

पच्चीसवाँ रंग ।

जिस प्रकार मलीन हृदय वालों के लिये मँद द्युति ही अच्छी मालूम पड़ती है, जिस प्रकार सुअर को सुअर की खुमार ही पसंद आती है ; जिस प्रकार शीशे पर पानी की बुन्द थोड़ी देर भी नहीं ठहरती है उसी प्रकार मेरे ऊपर भी इस प्रशसंनीय पतिभक्तिका असर रात भर ही रहा । सवेरा होने पर जब मैं उठकर बाहर बैठके

में आया तो मुझे राजराजेश्वरी की धुन समाई और यह इच्छा हुई कि उसका पता चलाऊँ कि वह कहाँ गई है और कब आवेगी साथही साथ हृदय में यह विचार भी दृढ़ होने लगा कि आगे से ऐसा बन्दोबस्त करलेना चाहिये जिस्में कि वह कहीं जा न सके ।

यह काम अकेले के फैसले का तो था नहीं । इससे नौकर भेजकर अपने तीनों सचतुर और मुझे अच्छी सलाह देने वाले साथियों को बुलवा भेजा । छबीले तो मकान पर था नहीं । इससे वह तो आ सका नहीं । पर रँगीले और छैलबिहारी लगभग आठ बजे आये और मेरे पास बैठ गये ।

बड़ी देर तक तो इधर उधर की बातें होती रहीं । आखिर में मैंने कहाः–" देखो भाई रंगीले ! कलतो राजराजेश्वरी ने बड़ा धोका दिया ? "

यद्यपि वह सारी बातों को जानता था तथापि उसने आश्चर्य दिखाते हुए इस ढंग से पूछा मानो उसे कुछ मालूम ही नहीं है । उसने पूछाः-" क्या हुआ क्या ? "

मैंने कहाः–" न मौलूम कल से वह कहां नाचने गई हैं । जिससे मुझे बड़ी तकलीफें उठानी पड़ीं ।

रंगी०। पर आप तो हर वक्त वहां रहते हैं । फिर वह कब चली गई कि आपको पता तक न चला ।

मैं,–हां भाई मैं दिनभर उसके साथही साथ था । शाम को जब घर आया और फिर वहां गया तो उसे न पाया ।

रंगी०। फिर आप को कैसे पता चला कि वह नाचने गई है ।

इसपर मैंने उसके नौकर की सारी बातें कह सुनाई । सुनकर छैलबिहारी ने कहाः– "खैर, कोई चिन्ता की बात नहीं । गई है तो आ ही जायगी । "

मैं–हां बात तो ठीक है । पर यार सच पूछो तो उसकी

जुदाई मुझसे बरदाश्त नहीं होती ।

रंगी०। (मुस्कुराकर) अगर ऐसी ही बात है तो चल चलो आज ठीक कर उसे नौकर रख लीजिए मौका भी अच्छा क्योंकि आज कल सिंहस्थ है,—कहीं लगन पताई का नाम निशान भी नहीं है । इससे आशा है कि वह भी राजी हो जायँगी और आपका काम सब सिद्ध हो जावेगा ।

इधर यही बात मेरे मन में भी थी । मैं तुरंत राजी हो गया पर इस समय तो वह अपने डेरे पर थी ही नहीं । किन्तु रंगीले ने कहा कि आज संध्या को अवश्य आवेगी और आशा है कि आप सफल मनोरथ भी हो जावेंगे । मेरे बार बार कहने पर भी उसने इस बात पर बड़ा जोर दिया कि आज संध्या को वह अवश्य आवेगी किन्तु जब मैंने पूछा कि यह तुमको कैसे मालूम हुआ कि वह आज अवश्य आवेगी तो उसने कहा कि जहां वह गई हैं मुझे मालूम है ।

इसके बाद उसने बड़ी सफाई से मेरे इस सवाल को उड़ाकर दूसरी बात छेड़ दी । इतने में बारह बज गये । मैंने उनके लिये कचौरी मंगाई और सब लोग खा खा कर ताश खेलते खेलते थक कर सो गये !

जब से राजराजेश्वरी गई तब से इसी समय मुझे कुछ आनन्द मिला । सब लोग इतना सोये कि जिस समय नींद खुली है उस समय छः बज गये थे निदान चारों आदमी क्योंकि इतने में छबीले भी आगया था, झट झट फरागत हो तथा नहा नहा और पुट बदल २ कर निकल खड़े हुए ।

ज्योंहीं चारों आदमी राजराजेश्वरी के मकान के पास पहुंचे हैं त्योंही दरवाजे पर एक गाड़ी खड़ी दिखलाई पड़ी । गाड़ी का दिखलाई पड़ना था कि मेरा दिल हरा भरा हो गया और मैं समझ गया कि मेरी प्रानप्यारी यानी जहर का प्याला आई हुई हैं ।

छबीले ने कहा—देखिये! गाड़ी खड़ी है। बाई जी आ गई हैं।

मैं,—हां मालूम तो ऐसाही होता है।

तेजी से चलकर चारों आदमी ऊपर कोठे पर पहुंचे। मेरे तीनों साथी बैठके में चले गये पर मैं उसके खास कमरे की तरफ मुंडा। ज्योहीं मैं उसके कमरे में पहुंचा त्योहीं वह कपड़ा उतार कर बालों पर हाथ फेर रही थी, मुझे देखतेही झट् वह मुस्कुरा पड़ी। उसके ऐसा करने से मैं उसकी तमाम शिकायतों को भूल गया। वरन् उसने ही उलटी शिकायत की:—

"प्यारे! तुम्हारेही लिये देखो बीड़ा छोड़े चली आ रही हूं। भला बताओ हरजाना कौन देगा?"

"यही देंगे? और कौन देगा!" कहती हुई एक सोलह साला नौजवान औरत कमरे के भीतर चली आई। इस आनेवाली औरत के रूप लावण्य और हाव भाव किसी हालत में भी राजराजेश्वरी से कम नहीं थे! वरन् दोनों की शक्ल भी बहुत कुछ मिलती जुलती थी। उसको सामने देख कर मैं भौंचक् सा उसकी तरफ देखने लगा। मुझे आश्चर्यित देखकर राजराजेश्वरी ने कहा:—आश्चर्य काहे दिखाते हो? यह मेरी बहिन श्यामा न हैं?"

आज के पहिले मुझे कभी श्यामा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इस से मैंने पूछा:—

"यह तो यहां कभी दिखलाईही नहीं पड़ीं।"

राज०। हां (एक राजा का नाम लेकर) यह उनके यहां नौकर न हैं?

मैं,—तभी तो पानी भी करारा है।

इस पर श्यामा तो मुस्करा पड़ी और साथही नखरे से मेरा हाथ पकड़ बोली:—"बस लाओ बहन का हरजाना दे दो।"

यद्यपि मैंने इधर उधर की बातों में टाल देने की बहुत कुछ

चेष्टा की परन्तु उसने उलटे हरजाने, क्योंकि बिना कहे सुन वही चली गई थी, के लिये ऐसी टँगड़ी अँड़ाई कि मुझे लाचार होकर जेब से सौ रुपये का एक नोट निकाल देनाहीं पड़ा।

नोट लेकर श्यामाने राजराजेश्वरी को समर्पण किया। उधर उसने भी उसे अलमारी के हवाले कर ताला चढ़ा दिया। जब मैंने देखा कि हमारा यह रुपया तो मुफ्तही में जाना चाहता है तो झट मैंने खिदमतगार को बुला दो बोतल रेड-जमाइका-ह्स्की के लिये बीस रुपये और दिये। रुपये ले वह गया और तुरंत बगल वाली दुकान से दो बोतल शराब और गिलास ला सामने रख दिया।

श्यामा तो मेरे बगल में थी ही। झट एक बोतल से एक गिलास उँडेल कर मैंने उसके सामने रखा और दूसरा बोतल दोस्तों के पास भिजवाते हुए उससे कहाः-"लो जानी! इसे नोशजां फरमाओ।"

श्यामा पहिले तो मेरे मुंह की तरफ देख होटों में मुस्कुराई। फिर उसने भेद भरी दृष्टि से राजराजेश्वरी की तरफ ताका। साथ ही मैं बोल उठाः-"जानमन! उधर क्या देखती हो। वे क्या ख़ाली रहेंगी।"

यह कह मैंने राजराजेश्वरी के आगे भी एक गिलास भर दी और दोनों बहिनो से पीने के लिये बार बार जिद करने लगा। निदान मेरी बातों में आ श्यामाने तो उसे चढ़ा लिया। पर चलता पुरजा राजराजेश्वरी किसी प्रकार भी लाख लाख नाक रगड़ डालने पर हत्थे न चढ़ी वरन् चालाकी से बराबर इंकार करती गई। खैर, मैंने यहीं गनीमत समझा कि श्यामा ने मेरी बात मान ली और अपनी बड़ी बहिन की तरह हठ न किया।

मैं धीरे धीरे शराब पीता जाता था और साथ ही साथ दोनों बहिनो से बराबर छेड़ छाड़ किये जाता था। इधर मेरे तीनों लम्पट

साथी भी जब बोतल खाली कर चुके तो एक एक करके पास आ गये। फिर क्या था, उन सभों ने आ और रंग जमा दिया। मैं उस दिन जिस आनन्द में पग रहा था उसकी बात लेखनी द्वारा नहीं लिखी जा सकती। पर सच पूछो तो थोड़ी देर के आनन्द के लिये ज़हर पीना ठीक नहीं। वास्तव में जो कुछ मुझे आनन्द मिल रहा था वह आनन्द नहीं बल्कि मीठा ज़हर था। उसी का आज यह परिणाम दिखलाई पड़ रहा है।

मैं कितनी देर तक उसमें पगा रहा इसकी मुझे याद नहीं कि इतने में एक खिदमतगार ने हाजिर हो कहाः—"भय्याजी! (अकसर राजराजेश्वरी के नौकर उसे इसी नाम पुकारते थे।) जैपूर का एक जौहरी * आया है और डेवढ़ी पर खड़ा है।"

मैं तो शराब में बदमस्त था पर ताहम जौहरी की बात सुन समझा कि गहरी जूती लगाने की चाल चली जा रही है। पर अब करता क्या? वही "बन का गीदड़ जायगा किधर।" वाला किस्सा था। मैं चुपचाप बैठा सोंचता रहा कि जौहरी साहब की सवारी आ खड़ी हुई। यद्यपि आने वाले की शक्ल सूरत जैपूरियों के समान थी परन्तु फिर भी मेरी बारीक नजरों ने ताड़ लिया था कि यह शक्ल बनाये हुए है और यहीं का रहने वाला है। पर मैं करता क्या? बोलने का कुछ मौका था ही नहीं। लाचार मैं भी उनकी खुशी में खुशी मिलाने लगा। जौहरी आकर सामने बैठ गया और राजराजेश्वरी से कहाः—

"अच्छा हुआ तुम आ गये क्योंकि मुझे कई चीजों की जरूरत भी थी।"

जौह०। तो फिर दिखलाऊँ?

---

* हर एक वेश्याओं के यहां ऐसों यानी जौहरी, गहने और कपड़ेवाले वगैरहों का पैगाम रहता है जहां उन्हों ने कोई अच्छा असामी पाया नौकर से उन्हें बुलवा मंगाया और तमाशबीन को उल्लू बना अपना काम निकाल लिया।

राज०। और बुलाया है किस लिये।

यह सुनकर जौहरी ने अपनी पेटी खोली। हजारे लम्फ की रौशनी में सच्चे नगीने लप लप कर आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगे। उसने कई चीजें निकाल २ कर दिखलाये पर उसमें एक चन्द्रहार के आगे सब चीजें मात थीं। राजराजेश्वरी ने उस चन्द्रहार को और श्यामा ने नाहीं नाहीं करते हुए एक अँगुठी को पसंद कर उससे पूछाः—" इन दोनों का कितना दाम है ? "

जौह०। साहब आपके हाथ तो हम कईबार माल बेंच चुके हैं और आप पुरानी गाहक हैं। यह दोनों चीजें एक नवाब की हैं।

श्याम०। हां होंगी दाम तो बतलाइये।

जौह०। चन्द्रहार का दाम बाईस सौ और अंगुठी पांच सौ की है

राज०। (बड़े गौर से) नहीं जी बड़ा दाम कहते हो।

मैं तो जानता ही था कि इसकी चपत मेरे ही सिर पर बैठेगी। निदान इस मौके में बचाव की कुछ उम्मीद देख कहाः—"बेशक इनका दाम ज्यादा है। बाबू मानिकचंद के यहां ऐसा ही हार चौदह सौ विका था।"

जौह०। हजूर वह चीज दूसरी ही रही होगी। आप जानते ही हैं कि जरा से एक पत्थर के बदल जाने से दाम बढ़ घट सकता है।

राज०। हां यह तो ठीक है पर ठीक ठीक बतलाओ कि कितना लोगे।

जौह०। आज तक बड़ी खाला के वक्त से आपके हाथ सौदा बेचते चले आते हैं मगर आपने कभी भी ऐसा मोल चाल नहीं किया।

मैं तो खुद मरा था। मुझे जिलाने के बदले रंगीलेने और ज़हर पिलाया। कहाः—" अजी कुछ घट बढ़ के हटो भी। "

जौह०। मैं क्या कहूं।

श्यामा बड़े गौर से उलट पुलट कर दोनों को देख रही थी। उसने कहा:—"दोनों का पचीस सौ।"

"आनके सिर पर लट्ठ पड़ी कहें भुसमें पड़ी।" अगर पचीस सौ की जगह सताईस ही सौ रहता तो क्या बुरा था। खैर, मेरे मुंह को तागे से सीने और बचाव का कोई उपाय न रहने देनेके लिये इतना मोलचाल कर दोनों बहिनो ने उसे पचीस सौ पर ठीक कर मुझसे इस माशुकाना नाजोअदा और ऐसी मीठी आवाज में जो एक आशिक मिजाज को मार डालने के लिये काफी थी। कहा:—"इन दोनों चीजों को दिला दीजिये।"

मैं,-अजी रात का वक्त है ऐसे समय में ऐसा सौदा नहीं होता कल मैं तुमको मानिकचंद के यहां से दूसरा ला दूंगा।

श्यामा और राजराजेश्वरी दोनों ने बड़े नखरे से कहा:— "नहीं हमें यही पसंद है।"

मैं,-ऐसे सौदों में रातके वक्त धोका हो जाता है।

राज०। (उसी अंदाज से) अगर धोखे वगैरह का डर है तो इन्हें कुल रुपया इस वक्त न दीजिये। बाकी कल दो पहर को दे दीजियेगा।

यद्यपि मैंने खूब हाथ पैर मारा पर किसी प्रकार से छुटकारा न मिली। लाचार हो मैंने जेब से सौ रुपये (इसके सिवाय मेरे पास और कुछ था ही नहीं) का नोट निकाल जौहरी के आगे फेंक दिया और उसे उठा देखकर वह बोला:-"बाबू यह तो सिर्फ सौ रुपये का नोट है।"

मैं बोलने ही को था कि राजराजेश्वरी बोल उठी। उसने कहा:-"हां इसे ले जाओ बाकी आकर दो पहर को ले जाना।"

यह सुन जौहरी मेरा मुंह ताकने लगा। मैं चाहता था कि कुछ कहें कि श्यामा बोल उठी:-"डरो नहीं। आंख मुंदे कल दोपहर को आना और बाकी चौबीस सौ ले जाना।"

यह सुन जौहरी ने अपनी पेटी सम्हाली। और जब वह चला गया तो दोनों बहिने आप से आप मुझे खुश करने के लिये लिपट पड़ीं। यद्यपि इस चोट से मेरा दिल भीतर से दुःखित हो गया था। परन्तु ऐय्याश मिजाज में इतनी ताब कहां कि वह अपने को सम्हाल सके। मैं फिर पूर्ववत हँसी मजाक करने ल"। जब उसने मुझे खूब पिघला लिया तो बातोंही बातों से कहाः–' प्यारे! देखो कल दोपहर को जरूर रुपया लेकर आना।"

यह सुन मैं सोंच पड़ गया। जवाब देने में शायद एक मिनट की देर हुई होगी कि फिर सवाल हो उठाः–" कहो रुकते क्यों हो?"

मैं,–(तपाक से) नहीं रुकने क्यों लगे। कल तुम्हें रुपये दिये जावेंगे।

राज०। (गले से लिपटकर) तुम तो धीमी आवाज में बोलते हो। जिससे शुबहा होता है।

मैं,–नहीं, नहीं शुबहा की कोई बात नहीं है.........

राज०। अगर कल दोपहर को न आये तब?

मैं,–इससे तो जान पड़ता है कि मेरी तरफ से तुम्हें विश्वास नहीं है।

राज०। नहीं प्यारे! ऐसा न कहो। मुझे शुबहा वगैरह जरा भी नहीं है सिर्फ डर यही है कि शायद तुम्हें आने में देर हुई तो जौहरी जान खा जावेगा।

मैं,–तो चाहती क्या हो। मुमकिन है कि देर हो जावे।

राज०। (कलम दावात और एक रसीदी स्टाम्प लगा कागज आगे रखकर) एक रसीद (एक आदमी का नाम बताकर) इन्हीं के नाम से रुपया लेने की लिख दो। मैं आपकी जमानत पर रसीद भेज सबेरेही रुपया मंगवा लूंगी और जौहरी के आते ही उसकी गठरी उसके हवाले करूंगी। अगर ऐसा न

कर सकी और ऐन वक्त पर उसे रुपया न दे दूंगी तो सुनने वाली दूसरी रंडियाँ मेरी निन्दा कर आपस में हंसेगी और कहेंगी कि झूठे ही इतनी शान शौकत है। (लिपटकर) प्यारे मेरा नाम बिका तो तुम्हारा बिक चुका।

मेरे साथी छैलबिहारी ने कहा:-"बेशक! तुमारी इज्जत गई तो इनकी गई और अगर इनकी गई तो तुम्हारी जा चुकी।"

लाचार, हजार यह ख्याल होते हुए भी कि, कल दोपहर तक ढ़ाई हजार रूपया कहां से आवेगा; मैंने कलम उठा रसीद लिख दी। रसीद को अच्छी तरह दोनों बहिनों ने देख भालकर अपने संदूक के हवाले किया। बाद को अपनी आलमारी खोल शराब की बोतल निकाला और उसे पिला पिलाकर वह मेरे दिल के उस रंज को दूर करने के लिये कोशिश करने लगी।

जान पड़ता है कि राजराजेश्वरी के शराब में किसी विषैली चिजकी मिलावट थी क्योंकि शीशे के दो छोटे गिलास भर पीने ही से मैं आपेसे बाहर हो गया। मेरे आँखों के नीचे अंधेरा छाने लगा। जब उसने मेरी ऐसी हालत देखी तो मेरा हाथ पकड़कर कहा:-"प्यारे चलो, बैठके में चलो और मेरी तरफ से श्यामा का गाना सुनो देखो यह कैसा गाती हैं।"

मैं,-जैसा कहो वैसाही सही।"

निदान सब लोग बैठक में आये। सफरदा तो तैयार बैठे थे सिर्फ उस्तादजी की कमी थी। आदमी भेजकर वह भी बुलवा लिये गये। बस फिर क्या था? सारंगी तबला और जोड़ी की आवाज ओस्माम तक पहुँचने की कोशिश करने लगी। श्यामाबाई ने भी बड़े नाजो नखरे से गाना शुरू किया।

इसमें कोई शक की बात नहीं है कि राजराजेश्वरी के समान श्यामा भी गानविद्या में पंडिता थी। उसने एकही गाने को इतने

सुरों में, इतने तरीके से गाया कि मैं प्रसन्न हो गया। उसके गान-निपुणता में मस्त हो मैं झूमने लगा। पर दुभार्ग्य! अभी उसका गाना खतम भी न होने पाया था कि एकाएक कई आदमियों के आने की धमधमाहट सुनाई पड़ी, साथही गाना बंद होगया और जो कुछ मैंने देखा उससे मेरी रूह फना हो गई।

कनअँखियों देखा कि सिर पर सात बड़े बड़े छुरे तने हुए हैं। सफरदा, मेरे साथी, श्यामा और राजराजेश्वरी सभी डरसे कांप रहे हैं। किसीमें इतनी ताब नहीं कि उनसे उनका अभिप्राय पूछे। चाहे औरत कितना ही चालाक क्यों न हो। पर उन से उनकी स्वाभाविक बातें नहीं जातीं। राजराजेश्वरी और श्यामा की ऐसी हालत हो रही थी जैसे बाज के आगे लवा,-शेर के आगे बँधी हुई बकरी का बच्चा। पाठक पहिचानिये, देखिये ये कौन हैं? अगर आप नहीं पहिचान सकते हैं तो सुनिये। ये सब वही बदमाश हैं जिसके हाथों में मैं पहिले भी पड़ चुका था। इतने दिन के किये हुए वादे का मुझे उसी दिन स्मरण हुआ। मन में सोंचने लगा, यदि रुपया बनिये के यहाँ दे दिया होता तो आज ये यमदूत क्यों दिखलाई पड़ते?

मैं इन्हीं बातों को सोंच रहा था कि उस दल के सरदार ने कहाः-" कहो बेटा! अब कहां जाओगे। ,,

मेरी सारी मस्ती जाती रही थी। नशा बिलकुल काफूर हो गया था। इस समय मुझे इसी बातकी धुन समाई हुई थी कि किसी प्रकार इनसे जान बचावें। पास में कुछ था भी नहीं। नहीं तो उससे भी कुछ आशा करता। भागने का भी मौका नहीं था। फिर भला भागता कैसे? उठ तो सकता नहीं था। जरा भी कोशिश करने में यमलोक पहुंचा दिया जाता। बारे उस समय, बचावका एक रास्ता दिखलाई पड़ा। चाहे वह कैसाही क्यों न हो। मैंनेभी

उसीसे अपना बचाव करना दृढ़ कर लिया। जिस जगह हमलोग बैठे हुए थे, वह मकान का पिछवारा था और मेरे दो ही हाथ की दूरी पर एक खिड़की थी। अंत में उनकी आंख बचाता हुआ, क्योंकि वे सब शराब के नशे चूर थे, धीरे धीरे खसक कर मैं खिड़की के पास पहुंचा और तेजी के साथ बाहर को कूद पड़ा।

छब्बीसवां रंग

प्रेमी पाठक मेरे मित्र श्यामलाल का नाम भूले न होंगे। यद्यपि पहले पहल मैंने उन्हीं के साथ जहरके प्याले का रास्ता देखा था परन्तु जिस प्रकार आग में डालने से सुवर्ण तप कर लालभभूका होजाता है, उसी प्रकार वे भी इस सुहबत से नसीहत हासिल कर चतुर हो गये। उनकी बात चीत से पाठकों को मालूम ही हो गया होगा कि वे पाहिले ही से उस तरफ से घृणा करते थे। परन्तु अब तो कहनाही क्या है। जिन दिनों में राजराजेश्वरी के फंद में मैं फँसा उन्हीं दिनों उनकी यहां से इलाहाबाद के लिये तरक्की के साथ बदली हो गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वे यहां होते तो मैं इस ज़हरके प्याले को न पी सकता और चांडाल राजराजेश्वरी के फंदे में न फंसता। क्योंकि जिस दिन से उनको यह पता चला था कि मैं कुकर्म में लगा हुआ हूं उसी दिन से उनकी निगाह मेरे ऊपर हो गई थी। खासकर जब कि पिता की मृत्यु होगई और मेरे रहस्य का परदा उनकें आंखों के आगे खुल गया तो वे मुझ पर इतना बिगड़े, इतना बिगड़े कि बोलना चालना छोड़ दिया। पर उसका कुछ असर न पड़ता देख उन्होंने एक सच्चे मित्र का दावा करते हुए फिर आपही आप बोलना शुरू करके मुझे समझाना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि वे नित्य ही मुझे समझाते थे परन्तु मैं उनकी बातों

की अवहेलना करता हुआ बराबर बुरी सोहबतों में पड़ कुकर्म में तत्पर रहा जैसा कि पाठकों के मालूम ही है। यह कहना कुछ भी बुरा न होगा कि उनकी निगाह रहने से मुझ में उनका इतना ख्याल तो जरूर हो गया था कि बाज़ार में जाती समय उनका ख्याल हृदय में बना रहता और बराबर मैं डरा करता कि कहीं भेंट न हो जावे।

इसी बीचमें मेरे दुर्भाग्य से उनकी बदली इलाहाबाद को जैसा कि कहा गया है, होगई और मैं निशंक होकर न नये सिर से पुनः ऐयाशी में जा फंसा।

उपरोक्त घटना, जिसका बयान कि पचीसवें परिच्छेद में किया गया है, हो जाने से मुझे उन बदमाशों की तरफ से भय सा हो गया और मैंने दिल में ठान लिया कि अब कोठे पर न जावेंगे। परन्तु राजराजेश्वरी के विना तबीयत को चैन भी नहीं थी। इससे सोंचते सोंचते यह ध्यान आया कि श्यामलाल का बाग इस काम के लिये बुरा न होगा और वहाँ बदमाशों की कोई अकी बकी न चलैगी।

यह सोंचकर मैं उनको ताली के सम्बध में लिखने ही वाला था। (क्योंकि पहिले जो मैंने कुंजी मंगाई थी उसे भिजवा दी थी) कि सुना कि आजकल वे बनारस ही में आये हुए हैं। इससे उनसे जा मिला। और जो कुछ बातें हुईं वे नीचे लिखी जाती हैं।

जिस समय मैं उनके पास पहुंचा वे किसी काम में लगे हुए थे। परन्तु मुझे देखते ही उन्होंने पूछाः—

"कहो भाई, आनेकी तकलीफ क्यों की?"

मैं,—सुनाकि आप आये हुए हैं इससे दर्शन को उपस्थित हुआ हूँ।

इसपर उन्होंने मुझे बड़े खातिर भाव से पास बैठाया और पान इत्यादि से सत्कार करने के पश्चात कहाः—"देखो मित्र! ज्यादा कहने से तुम बुरा मानने लग जाते हो। परन्तु आजतक

तुमने मेरी बातों पर जरा भी ध्यान न दिया । देखो, जरा आइने में अपने चेहरे को तो देखो, कैसी सूरत हो गई है । "

बात तो सच्ची थी । मैं उत्तर क्या देता । चुपचाप सिर झुकाये रहा । मुझे चुपचाप देख वे भी चुप हो रहे । थोड़ी देर के बाद उन्होंने पूछाः-" अच्छा कहो चले क्या हो । "

इस पर मैंने इधर उधर की बात छेड़ी । पर उन्होंने ऐसे सवाल किये कि जिससे लाचार होकर मुझे खुलना ही पड़ा । लाचार हो मैंने कहाः-" बाग की ताली चाहिये । "

"अहा बाग के बैठके की ताली चाहिये । " श्यामलाल ने मुंह बनाकर कहा,—" मैं तुम्हारा मतलब समझ गया । दोस्त क्या करते हो । मशहूर है कि रंडी किसकी जोरू और भडुँआ किसका साला," कही रंडी भी किसी की हुई हैं । वे पैसे की यार हैं....

मैं,-(बात काटकर) पर राजराजेश्वरी में यह बात नहीं है ।

श्याम० । (हँसकर) मैं उसे बाखूबी जानता हूँ । सारा जमाना छानकर चुपचाप हो बैठा हूं । वह बेमुंह की सांप है । मुझसे छिपाते क्या हो ? तुम्हारे भीतरी हिस्सो में दीमक लग गये हैं पर इतना होने पर भी तुम्हे शर्म नहीं है । सोचो, अपने बाप दादे की इज्जत सोचो जो कुछ किया वह बहुत किया । अब से सम्हलो ।

यद्यपि बातें सब सच्ची और यथार्थ थीं । परन्तु मेरे आजतक के स्वभाव के अनुसार वे मुझे बहुत बुरी जान पड़ीं । मेरे चेहरे की रंगत बदल गई, मुंहपरं दूसरे ही किस्म के लक्षण प्रगट हो गये । मेरी बिगड़ी हुई रंगत को देख वे भी जरा रुखिया गये, बोलेः-" मुझे आपकी खुशी और नाराजी की परवाह नहीं है । चाहे तुम रंज हो और चाहे खुश, पर मैं कहूंगा साफही साफ । "

कहां तो मैं उनसे मिलने और ताली लेने गया था कहा उन की बातों को सुन तपाक में आ गया और कहाः—" अहा, बड़ा

साफ कहने वाले हुए हैं। वही मसल है कि "सत्तर चुहा खा के बिलाई हुई भगतिन" आज.... ....

श्या०। जिस प्रकार मैंने किया है उसी प्रकार तुम भी करो। अपने बाप दादा की इज्जत न डुबाओ।

क्रोध से मेरा बुरा हाल हो रहा था। यद्यपि मैं अपने को बहुत सम्भलता था पर न सम्हल कर और मेरे मुंहसे "खुदरा फजीहत दीगरा नसीहत।" निकल ही गया। इसपर कुछ कहने के लिये वे मुंह खोलना ही चाहते थे कि मैं उठ खड़ा हुआ और झुंझलाकर बोलाः-"अच्छा कहिये ताली देंगे या नहीं।"

यह बात पूर्ण रूपसे प्रगट है कि सच्ची बात होने पर कहने वाले को अकसर गुस्सा चढ़ आता है। फिर उस हालत में जिस म कि एक झूठा उसका मुंह नोचे कहना ही क्या है ? मुझे इस प्रकार झुंझलाते देखकर श्यामलाल का मिजाज भी जरा गर्म होगया और उनके मुंह से निकल गया "जाव मैं नहीं देता।"

खरके लिये एक चिनगारी काफी है। उनका उत्तर पाते ही मैं झनकता पटकता उनको भला बुरा कहता वहां से चल पड़ा। पर सच्चा दोस्त कभी भी दोस्त के कहने का बुरा नहीं मानता। जिस प्रकार वह क्रोधित हो जाता है उसी प्रकार वह ठंडा भी हो जाता है। मैं शायद दस कदम भी न गया होगा कि वे मुझे पुकारने और कसम दे देकर ठहराने लगे। पर जब मैं न ठहरा तो खुद मेरे चले जाने के डर से नंगे ही पैरं दौड़कर मेरे पास आये और मुझे पकड़ ले गये।

सत्ताईसवां रंग।

सैकड़ों ऐयाशों और तमाशबीनोंके, सालहासाल के तजरुबे से यह बात सबूत के हद तक पहुंच कर तय पा चुकी है कि प्रत्येक

वराङ्गना (तवायफ) चाहे वह घुँघुरुबंद हो चाहे खानगी, गरीब हो चाहे मालदार,-वह एक न एक आदमी को अवश्य सच्चे दिल से चाहती है। रंडियों के सच्ची चाहत की यह पहिचान है कि वह कभी अपने माशूक से एक पैसा न मांगे। यदि मांगे तो सिर्फ उतनाही जितना कि मामूली खर्च जैसे खाना पीना और कपड़ा। जिसकी कि हर एक को आवश्यकता रहती है। इसके अतिरिक्त यदि वह किसी प्रकार की तकलीफ जाहिर करे तो जान लेना चाहिये कि बीबी साहिबा हाथ रंगना चाहती हैं। इसमें यदि उसके आशिक की तरफ से, यदि उसे कुछ कष्ट भी मिल जावे तो उसकी उसे शिकायत नहीं रहती। बरन् जिसे सच्चे तरीकेसे वह चाहती है उससे कभी भी एक पाई फालतू जरूरत के सिवाय लेना तथा उसका खरचाना पसंद नहीं करती। चाहे वराङ्गना अमीर हो चाहे गरीब पर उनमें इस बातकी शरह होगई है कि वह अपने से छोटेही को चाहेगी या अपने से किसी छोटे पर आशिक होगी जिनपर तजरुबेसे तजरुबेकार ऐयाश या तमाशबीन के ख्याल की कौन कहे वहम गुमान तक नहीं होता और न हो सकता है।

यह कायदे की बात है कि जिस चीज पर दिल्ली मुहब्बत रहती है उसका हर वक्त ख्याल तथा लिहाज बना रहता है। इस कारण पहिले तो उसकी बुराई नजर नहीं आती यदि आई भी तो भली जान पड़ती है। और जिसपर दिलका खिंचाव नहीं होता जिसे दिल सच्चे कायदे से नहीं चाहता उसकी जरा जरा सी बातें आंखों के सामने नाचा करती हैं, और छोटी छोटी बातें खटक जाती हैं। अकसर देखा गया है कि कहां तो रंडी उनके (तमाशबीन) साथ चाल चलती हैं कहां वे उसका ख्यालही नहीं करते जिससे कि आखिर में उन्हें भारी धोखा खाना पड़ता है और आंख खुलने पर हाथ ही मलते रह जाना होता है।

जो लोग यह सोंचते हैं कि रंडी रुपया देने से चाहती हैं वे बिलकुल गलती पर होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मरदों की अपेक्षा औरतों में प्राकृतिक पदार्थ की ज्यादती रहती है। जिस से उनका किसी न किसी को चाहना बहुत जरूरी है। और वे चाहती भी हैं। परन्तु जिससे उनको पैदा करना होता है, जिससे वे रुपया ऐंठना चाहती हैं उसे कभी भी नहीं चाहतीं। वरन् ऐसे को चाहती हैं जो गरीब और मुफलिस रहता। इसका कारण यह है कि दौलत खर्चने वाले तमाशबीन का ख्वाहमख्वाह नाज बरदारी करनी पड़ती है। और नाजबरदारी का पहाड़ इतना भारी होता है कि जिसके बोझ से नाकों में दम आ जाता है। रंडी के विचारे गरीब माशूक के पास माल तो रहता नहीं जिससे कि वे अपना दिली अरमान निकाल सके इससे वह रंडी की इतनी सेवा करता है कि नौकर विचारा क्या करेगा। तमाशबीनों के लिये यह कहावत ठीक ठीक घटती है कि "दुःख सहे बी फाख्ता और कव्वे अंडे खाँय।" विचारा तमाशबीन मर मर बाई जी को पालता है और मुफ्त में मुफलिस उनके रुपयों का आनन्द उपभोग करता है।

किसी प्रकार मर मर कर, हजार हजार चेष्टा करके, सैकड़ों तोड़ जोड़ लगाकर जिसका वृत्तांत कि आगे लिखा जावेगा, मैं लगभग दो बजे के राजराजेश्वरी के मकान पर पहुंचा। पर अभी दो सीढ़ी भी न चढ़ा था कि ऊपर से बड़ा हल्ला गुल्ला सुनाई पड़ा। एकबार का मैं डँहकाया हुआ था। इससे ऊपर चढ़ने की हिम्मत न पड़ी। वहीं सीढ़ी के बगल में, दरवाजे के पास खड़ा हो गया। और कान लगाकर सुनने लगा।

लगभग पन्द्रह मिनट चुपचाप खड़े रहने पर पता चला कि झगड़ा दोनों बहिनो में हो रहा है। जब इस बात का पूरी तरह पता चल गया तो कई हंडा और ऊपर चढ़ गया और जो कुछ

सुनाई पड़ा वह नीचे लिखा जाता है।

श्यामाने कहाः—"मुसवा प्यारा है तो तुमको है, उसकी आशिक हो तो तुम हो। पर मेरे लिये तो वह नौकर ही है। जिस प्रकार वह जूती ढोता आया मैं उसी प्रकार, उसी नजरों से उसे देखती भी हूं। उसकी क्या मजाल जो मेरे कामों पर भुनभुनाय, मुझे आँख दिखलावे? आज उसकी हिम्मत इतनी बढ़ गई। बापरे बाप!!!"

राजरा०। वह जरूर ऐब देखने पर कहेगा औ ....

श्या०। कहेगा तो तुमको कहेगा। बरदाश्त करोगी तो तुम करोगी। अगर अब बोला तो मैं जुतियों से उसका मुंह लाल कर दूंगी।

पहिले तो मेरी समझ में कोई बात न आई कि किस मुसवा की बात हो रही है। पर थोड़ी ही देर के बाद ध्यान में आगया। साथही माथा ठनका कि दाल में कुछ काला है। मुसवा नामक राजराजेश्वरी के यहां एक नौकर था। वह अकसर चिलम भरा करता था और बाई जी का पीकदान सम्हाले रहता और हर वक्त वह बेदाम का गुलाम बना रहता। पर इसका मुझे जरा भी संदेह नहीं था जैसा कि आज श्यामा के मुँह से सुन पड़ा। यद्यपि यह बात बिलकुल अक्षरशः सत्य थी, श्यामा जो कुछ कह रही थी उसमें एक हरफ भी झूठा नहीं था, फिर भी उसकी बातों पर मुझे विश्वास न हुआ। जी में तो आया कि चल कर झगड़ा मिटा दूं। पर फिर कौतुकवश वहाँ ठहर गया और सुनने लगा।

श्यामा की बात सुन मुसवा तमक कर सामने आ गया और कहने लगा,—"जाओ जाओ राजा साहब के यहां की जूती चटकारो।"

श्यामा झुंझला उठी और बोली—"राजराजेश्वरी सब तुम्हीं सुनवा रही हो, मना करो नहीं तो अच्छी बात न होगी।"

राज०। अच्छी बात क्या न होगी। जैसा करोगी वैसा पाओगी

श्या०। तो यही न कहो कि यह सब तुम्हीं करा रही हो।

राज०। करा तो रही हूं फिर ....

मुसवा ने जरा आगे बढ़कर कहा,–"बोलो फिर क्या करोगी।"

अब श्यामा से बरदाश्त न हो सकी। उसने जूती उठाकर मुसवा के सिरपर दे ही तो दिया। जूती का चलाना कहिये कि राजराजेश्वरी बचाने के लिये आगे बढ़ी और छुटी हुई जूती उसीको लग गई। फिर क्या था। दोनों बहिनों में गुत्थी गुत्था होगई। मुसवा दौड़ दौड़ कर राजराजेश्वरी की मदद करने लगा। कहावत मशहूर है कि "एक के लिये दो खुदा हो जाते हैं।" नाजो अदा की पली और ऐशोआराम में रहने वाली श्यामा थक गई। इस बीच में मैंने ऊपर पहुंच दोनों को अलग अलग कर दिया। पर दोनों तरफ से कहा सुनी का फौवारा छूटता रहा। राजराजेश्वरी को अपना पक्ष करता देख मुसवा का दिमाग और बढ़ गया। राजराजेश्वरी श्यामाको लक्ष कर कहनेलगीः–"बस जबान रोको नहीं वो अच्छा न होगा।"

श्या०। अच्छा क्या न होगा? क्या जौनपूर का जूता * भूलगया कहो कि खैर होगई नहीं तो तुम्हारी चालाकी मिट्टी में मिलजाती। थुड़ी है तुम्हारी जिन्दगी को! तुम सोने के घड़े की ज़हर हो! जहर का प्याला हो! जितना जो चाहता है उसे उतनाही उलटी छुरी से हलाल करती हो!!!

यद्यपि ये बातें राजराजेश्वरी को गुस्सा दिलाने के लिये कम न थीं तथापि मेरे उपस्थित रहने के कारण उसने बात न बढ़ने तथा अपनी चाल खुलने के डर से बड़ी चालाकी से काम लिया और कहाः–"लो तुम्हीं इस घर में रहो। अब मैं यहाँ न रहूंगी। (मुसवा से) एक किराये की गाड़ी ला।"

---

* वह किस्सा यह है कि किसी तमाशबीन को इसने ठगा था। आखिर में झुंझला कर राजराजेश्वरी को ठगने के लिये उसने धोका दे नाचका बीड़ा भेजवा उसे जौनपुर बुलाया। दीहात में ले जाती समय उसने मुसवा और इसको खूब पीटा और चाहता था कि अपना रुपया इसके जेवरों द्वारा वसूल करलें कि कई मुसाफिर आगये और वह अपने साथियों सहित भाग निकला।

श्या०। तुम क्यों जाती हो । मैं ही अब तुम्हारे साथ न रहूंगी। यह तुम्हारा घर तुम्हीं को मुबारक हो।

राज०।' तुम्हीं रहो। मैं न रहूँगी।

श्या०। नहीं नहीं तुम्हीं मुसवा के साथ ऐश करो मैं ही न रहूंगी।

यह कह वह अपना सामान बाँधने छानने लगीं । चतुरा राजराजेश्वरी अपना मतलब सधते देख चुप हो गई। इतने में मुसवा भाड़े की एक गाड़ी ले आया और श्यामा अपने सामानों क साथ एक दूसरे मकान में जा ठहरी।

* * * * * * * * * * *

मेरे देखते देखते इतना किस्सा हो गया पर मैं चुपचाप खड़ा सारी लीला देखता रहा। श्यामा के चले जाने के बड़ी देरतक वहां सन्नाटा छाया रहा। आखिर में मुसवा एक लोटा पानी ले सामने खड़ा हो गया और कहने लगा:—"लो अब मुँह हाथ धोओ देखो बाबू साहब बड़ी देर से खड़े हैं उनकी बात तो पूछो।"

मुसवा ने कई बार इसी प्रकार मिन्नत की आखिर में चतुरा राजराजेश्वरी ने हाथ मुँह धोया। फिर इस प्रकार भुनभुनाने लगी:— "।छिः क्या मैं इसी खिदमतदार के लायक हूं। छिः! छि!"

इतने में मुसवा ने बैठके में मुझे ले जाकर बैठा दिया। वह भी भुन भुनाती हुई मेरे पास आई और मुझ से शहादत भराने लगी:— "देखा साहब, आपने भी न देखा है क्या मैं इस जुतीखोर मुसवा के लायक हूँ। क्या यही मेरे इस अनुपम शरीरका उपभोग कर सकता है?"

मैं,—नहीं नहीं। भला कभी ऐसी बात हो सकती है। जान पड़ता है श्यामा को कुछ झक सवार हो जाती है।

राज०। झक,—क्या आज तो उसने मेरी इज्जत लूट ली। आपके सामने तो मुझे दो कौड़ी का बना दिया। इस समय मैं

बेहया हो कर आपके सामने आई हूं। नहीं तो अब मेरा मुंह इतना नहीं कि आपके सामने हो सकूँ।

यह कह कर वह रोने लगी। उसके आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। मैं यद्यपि पाहिले जांच की फिक्र में लगा हुआ था, परन्तु अब मुझसे उसकी वाली छोड़ और कुछ कहते न बन पड़ा। मैंने उसे चुप कराते हुए कहा,—"नहीं नहीं इज्जत क्या लूट ली। गुस्से में आदमी को उचित अनुचित का कुछ भी ख्याल नहीं रहता। मुंह में जो आता है वह वही कहने लग जाता है। इसके अलावे मैं ग़ैर तो हूं नहीं। इसमें कोई हर्ज की बात नहीं है। उसकी बातों का मेरे दिलमें कोई भी ख्याल नहीं है। इसके लिये तुम मेरी तरफ से विश्वास रखो।"

उसने कहाः-"खैर भई कि आपही रहे। आपही कहिये, आज दिन कोई दूसरा होता तो क्या होता।

मैं,-इन सब बातों का ख्याल छोड़दो। कविगिरधरराय ने कहा है कि "बीती ताहि बिसारदे आगे कि सुध ले, जो बनिआये सहज में ताहि में चित्त दे।" सो बीती हुई बात को तो अब जाने दो और आगे की देखो। हाँ यह तो बतलाया ही नहीं कि यह लड़ाई क्यों हुई?

राज०। क्या कहूं साहब, इसके बारे में कुछ न पूछिये। बात यह हुई कि जो पुरजा आप से लिखवाया था वह कारगर हुआ नहीं, क्योंकि जिसके नाम का था वह बाहर गये हुए हैं। दूसरे आपने बारह बजे का वादा किया था। सो आप भी आये नहीं थे। आपको खबर देना भी मैंने ठीक न समझा। थोड़ी देर तक तो मैं उसे बैठाये रहा। फिर श्यामा से कहा कि, अपने पास से रुपये दे दो, बल्कि दोनों चीजें भी अपने पास रखो रुपया पाने पर देना।

इसपर उसने देने से नाहीं करदिया। पर जब मैंने ज्यादा कहा

तो लगी भुनभुनाने। हांला कि वह राजा साहब के यहां से कई हजार रुपये ले कर आई थी।

यद्यपि राजराजेश्वरी ने गढ़त अच्छी गढ़ी परन्तु सच्चे झूठे में बड़ा भेद रहता है। उसकी सारी बातें मेरे दिलपर खटक गईं और मैंने पूछाः-"फिर मूसे का जिक्र कैसा था ?"

राज०। बात यह है कि जब लगी वह भुनभुनाने तो मुसकाने कहा, क्या झूठ ही मूठ भुनभुनाती और बहाना करती हो,-लाई तो हो दे दोगी तो क्या कहीं चला जावेगा।

उस का इतना बोलना कहिये कि वह आग बबूला हो गई और लगी उसकी लथाड़ लेने। फिर जब मैं बोली तो उसने बहिन हो कर भी मुझ पर ऐसा फसाद जोड़ा। (रोकर) इसके बाद जो कुछ हुआ वह आपको मालूम ही है।

बस, पाठक आपही पहिली (श्यामा की बातें) और इसकी बातों को निचोड़ कर देख लें कि किसमें कितना सार है। यद्यपि मुझे सारी बातें मालूम होगईं तथापि उसकी मुहब्बत में अनजान बन कर मैंने कहाः-"ऐसे मिजाज का आदमी ठीक नहीं होता। खैर,-अब वह सब बातें जाने दो। इसमें तुम लोगों का कुसूर नहीं है। कुसूर है मेरा क्योंकि अगर मैं देर न करता तो तुम लोगों में इतनी कलह न होती।"

राज०। नहीं प्यारे, बेवकूफी मैंने की जो उस से कहा। अगर न कहती तो लड़ाई न होती। इसके पश्चात् उसने बहुत सी उलटीं सीधी बातें समझाईं और बोलीः-"अच्छा हुआ कि चली गई।"

मैं,-हां अच्छा ही हुआ। मैंने तो उसे बड़ा सीधा सादा समझा था परन्तु वह तो एक ही निकली।

राज०। वह तो अब चली ही गई। नहीं तो कितने गुल खिलते।

मैं,-ऐसों से और उम्मीद ही क्या हो सकती है। खैर, यह तो बताओ वह जौहरी कहां गया।

राज०। घर चला गया है आता ही होगा।

मैं,-क्या उसका मकान यहीं है?

राज०। नहीं। मेरे घर कहने का मतलब उसके डेरे से है।

थोड़ी देर तक इसी प्रकार बातें होती रहीं। फिर शराब मंगाई गई और उसे पी पी कर दोनों ने अपना अपना गम मिटाना शुरू किया।

अट्ठाईसवां रंग।

अब मैं पचीसवें रंग के सिलसिले की तरफ मुड़ता हूं। इस से पाठकों को भी मेरे साथही साथ उसी तरफ मुड़ना चाहिये।

कूदने को तो खिड़की राह मैं नीचे को कूद पड़ा। पर आज के पहिले मुझे वहाँ की बिलकुल खबर न थी कि वहां क्या है और क्या नहीं। जिसे मैं मकान का पिछवारा समझे हुए था वह पिछवारा नहीं था बल्कि वह राजराजेश्वरी के मकान के पैखाने वाला कमरा था। जिसके बीच में ऐन खिड़की के नीचे एक पक्का चहबच्चा बना हुआ था। और उसी में सारे मकान के नल का गंदा पानी और कीचड़ इकट्ठा हो नहर में जाता था।

कूदने के साथ ही मैं एक दम चार पोरसे के नीचे आ उसी चहबच्चे में गिरा और गरदन तक उसी बज बजाते हुए कीचड़ में धंस गया। यद्यपि मुझे इस कुदान में कम चोट न आई तथापि डर एक बुरी बला है। बदमाशों के भय से मैंने हिम्मत न छोड़ी और उस चोट की परवाह न कर लंगड़ाता हुआ बाहर निकलने की कोशिश करने लगा कि ऊपर से उसी बदमाश सरदार का कंठरव सुनाई पड़ा। उसने कहाः-"बेटा जाते कहां हैं।"

उसकी यह बात सुन कर मैंने भर सक जल्दी की। ताहम कितनी हिम्मत करता। लगी हुई चोट ने मुझे इतनी फुरती करने की आज्ञा न दी कि उन के आने के पहिले मैं उस नर्ककुंड से बाहर सड़क पर निकल जाऊं और उन से अपना पल्ला छुड़ाऊं। किसी न किसी प्रकार उस नर्ककुंड से निकल कर मैंने मिट्टी पर पैर रक्खा ही था कि सीढ़ियों पर कई आदमियों के तेजी से उतरने की धमधमाहट सुनाई पड़ी और एक ने उस कोठरी के दरवाजे के पास पहुंच और भीतर झांक कर कहाः—"यार! भीतर तो बड़ा अंधेरा है। पर आहट से जान पड़ता है कि भतीजे जी भीतर ही हैं।"

इतना सुनना था कि मेरी जान निकल गई। मैंने घबराहट और सहायता की आशा से ऊपर खिड़की की तरफ देखा तो अपने मित्रों को सफरदाओं के साथ झांकते पाया। पर वहाँ से कोई भी न मिनका और न मदद को कोई सामने आया। निराश होकर मैंने इधर उधर हाथ पैर मारा पर छिपने लायक कोई जगह नजर न आई। इतने में दरवाजे पर प्रकाश दिखलाई पड़ा। रही सही आशा भी जाती रही और बचाव का कोई उपाय न देख कर मैं लाचार फिर उसी चहबच्चे में कूद पड़ा और जिस समय सब उसके पास आये मैं उसी कींचड़ में नाक कान दबा कर डूब गया।

डूबने पर मुझ पर क्या क्या बीती सो अवर्णनीय है। केवल उसके स्मरण मात्र से ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शास्त्रों में नर्ककुंड की जो बात लिखी है वह सारी वहाँ दिखला गई। बज बजाता हुआ पानी, सड़ा हुआ कींचड़, रेंगते हुए बड़े बड़े ढोले, झनकारते हुए झींगुर, भनभनाते हुए और डंसीले मच्छड़ इत्यादि मेरे कोमल हृदय पर चोट पहुंचाने लगे। किन्तु प्राण बड़ा

प्यारा पदार्थ है। आदमी भरसक उसे जाने नहीं देता। इसी के लोभ से मैं दम साधे उस नर्ककुंड में डूबा रहा । कोठड़ी तो बड़ी थी नहीं। दमकी दम में सभों ने उसे रत्ती रत्ती छान डाला। आखिर में सरदार ने उस से (जिस ने कहा था कि भतीजे इसी में हैं) पूछाः—"कहो, इस में तो नहीं है कहीं निकल तो नहीं गया ?"

उस ने उत्तर दियाः—"कह नहीं सकते। मगर मुझे तो आहट मिली थी।"

यह कह उसने पुनः नये सिर से लालटेन की रौशनी में सारे कमरे को ढूंढ डाला। जब कहीं मेरा पता न चला तो निराश हो यह कहते हुए "अच्छा बचा जावेंगे कहां।" सब बाहर को लौट पड़े।

यद्यपि उपरोक्त कार्यवाही में दस मिनट से ज्यादा न लगे होंगे तथापि डुबकी की हजार आदत रहने पर भी मैं नर्ककुंड की पीड़ा से घबरा उठा,--दम घुटने लगा था कि इतने ही में उनके चले जाने की आहट मिली और मैं बाहर निकला।

बाहर निकल कर मैंने धड़कते हुए कलेजे से इधर उधर झाँक कर देखा, जब कोई न दिखलाई पड़ा और न कोई ऊपर से, चाहे भये के कारण चाहे और किसी मतलब से, नीचे न आया तो मैं कीचड़ में लुथड़ा पुथड़ा अपनी जान में लोगों की नजर छिपाता हुआ वहां से सीधे घर को भागा।

रात ज्यादा बीत जाने से चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। घर, मेरी स्त्री भी मेरे आने की बाट देख थक कर सो गई थी। किबाड़ बंद हो गये थे। परन्तु ज्योंही घर के दरवाजे पहुंच आवाज देने के साथ ही मैंने थपकी दी त्योंहीं मेरी आदर्श आज्ञाकारी स्त्री, मजदूरनी के उठने में बिलम्ब जान झट दौड़

कर आई । आते ही उसने किवाड़ खोल दिया । पर मेरी भयानक शक्ल देख वह झिझक कर पीछे हटी और मैंने कहाः- " डरो नहीं । मैं ही हूं । "

स्त्री० । हैं यह क्या?

मैं,–कुछ नहीं ।

यह सुन वह बगल में हो गई। मैं भीतर आया । तुरंत ही वह भी किवाड़ बंद कर पीछे पीछे आई । आतेही उस ने मजदूरनी को आवाज दी । पर मेरे मना करनेपर वह अपने हाथों से मुझे नहलाने धुलाने लगी । तत्पश्चात् बस्त्र बदल कर मैं करवट बदलने के लिये बिस्तरे पर चला गया ।

उन्नतीसवां रंग ।

दुनियां में जितने काम हैं सब की सीमा है। सीमा के बाहर जितने काम होंगे उस का नतीजा जरूर भयानक होगा और उस में बहुत बहुत तकलीफें झेलनी पड़ेंगी । मेरे बाप जो कुछ छोड़ मरे थे वह तो पाठकों को मालूम ही है। नगद तो कुछ था ही नहीं। माता इत्यादि (मेरी स्त्री को छोड़) के रकम बेंच उन्होंने किसी किसी प्रकार इज्जत बचाई थी । दुकान में जो कुछ माल था वह रोज रोज बिकता गया और इधर मैं घर से ले ले जाकर फूंकता गया । ज्यों ज्यों दुकान का माल कम होने लगा त्यों त्यों बिक्री भी कम होने लगी । बात सच है; न रहेगा तो बिकेगा क्या ? यद्यपि बूढ़े विश्वासनीय मुनीम ने बहुत हाथ पैर मारा पर मेरे आगे उसकी एक न बसाती । जो कुछ वह बेंच कर दे जाते सबेरे मैं ले लेता । जब कभी देने में वह जराभी बिलम्ब करतीं तभी मैं भला बुरा सुनाने लगता और जबर्दस्ती ले जाता । उसने एक बार समझाया, दो बार समझाया पर जब देखा कि

उसका असर उलटा हो रहा है और साथही ताड़ना भी सहनी पड़ती है तो उसने कहना सुनना बिलकुल बंद कर दिया और मैं निःशंक मनमानी करने लगा।

करने को तो मैं राजराजेश्वरी के यहां रुपये का वादा कर आया पर घर में इतना रुपया कहां जो लेजाकर उसको इतनी जल्दी दे देता। दुकान की बिक्री थोड़ी थी, चार पांच सौ से काम भी नहीं चल सकता था। इसके अतिरिक्त अगले परिच्छेद की हो जानेवाली घटना के कारण मैं उन सब साथियों से भी सहायता नहीं चाहता था,-दूसरे यह डर था कि यदि किसी से रुपया मांगा तो वह कहेगा कि तुम्हारे बाप इतनी मिलकियत छोड़ गये और तुम कर्ज मांगते हो?

इसी प्रकार रात भर मैं सोंचता और करवटें बदलता रहा। सबेरे को जब उठा तो चेहरा फिक्रमंद था,-तरदुद से जान परेशान थी। लाचार हो मैं स्त्री की रकम पर हाथ फेरना निश्चय कर मौका ढूढ़ने लगा। सोंचा कि जब वह भोजन बनाने जावेगी तो हाथ फेरेंगे। पर मौका नहीं मिला। देखा वह अपने कमरे ही में बैठी हुई है। इसी इँतजारी में धीरे धीरे भोजन का समय हो गया। मजदूरनी ने आकर कहाः-"भैया! भोजन कर आइये।"

मैं,-आज खाना तो हुआ नहीं?

मजदूरनी ने मेरे एक रिश्तेदार का नाम बतलाकर कहाः-"उन्हीं के यहां से पूरी आई हुई है।"

मैं,-मेरी तबीयत कुछ खराब है इससे इच्छा होती है कि खिचड़ी खाऊँ।

यह समाचार पातेही मेरी आदर्श स्त्री बिना कुछ कहे सुने खिचड़ी की तैयारी में लगी और उसको ध्यान पूर्वक इधर फंसा देख मैं चुपचाप उसके कमरे में गया। ताली तो मिली

नहीं,-और मेरी हिम्मत ही क्या? कि उससे मांगे। इससे किसी प्रकार एक दूसरी कुंजी लगाकर ज्योंहीं मैंने घुमाया त्योंही ताले में लगी हुई घंटी टन टन बोल उठी और मैं झम्र हो चुपचाप हो गया।

इसके पांच मिनट बाद ठहरने पर फिर ताली घुमाया। हजार धीरे घुमाने की कोशिश करते रहने पर भी धक् धक् करने वाले कलेजे और कांपने वाले हाथ से वह तेजी के साथ घुम गई जिसके साथही वह ताला पांचबार टनटनाहट की आवाज देकर खुल गया।

इस जमाने में कोई भी ऐसा नहीं दिखलाई पड़ता जिसे रुपये की लालच न हो। रुपया वह आकर्षण शक्तिमान है जिसके लिये बड़े बड़े मित्रो में दमकी दममें खटपट होजाती है,-सालहा-साल की बनी हुई मित्रता,-जिसके लिये नाना प्रकार की तकलीफें झेलनी पड़ती हैं,-दमकी दम में टूट जाती हैं,-बरसों की कोशिशों, मेहनतों और मुहब्बत पर दम की दम में पानी फिर जाता है। जहांतक मुझे मौका पड़ा है आजतक कोई भी ऐसा न दिखलाई पड़ा जो इस खूबसरत--बला के फंदे में न फंसा हो।

इसके अतिरिक्त सदा से प्रसिद्ध है कि औरतें मरदों की अपेक्षा विशेष लालची होती हैं, और यही कारण है कि वे संजम इत्यादि के कार्य के लिये प्रसिद्ध हैं। तालेकी घंटी सुन मेरी स्त्री कौतुकवश रसोई घर से निकल कर अपने कमरे में आई और मुझे ऐसा घृणीत कर्म करते देख और मेरा असली मन्शा समझ दांतों अंगुली दे चुपचाप खड़ी हो गौर से देखने लगी।

मैंने नजर फेर उसकी तरफ कनअंखियों से देखा और उसे खड़ा पा जल्दी करने लगा कि किसी प्रकार यहांसे निकल चलें। जल्दी जल्दी करके माला, चद्रहार प्रभृति कई दामी चीजों को निकाल बाहर किया और चाहता था कि उठ चलें कि मेरी स्त्री जो इतनी देर तक चुपचाप खड़ी थी, इस दृश्य को देखने की ताब न

लाकर मेरे पैरों के पास हाथ करके गिर पड़ी और जार जार रोने लगी। उसकी रुलाई का जोश इतना तेज था कि उसकी घी घी बंध गई पर मुझे इसकी क्या परवाह थी ? मैं ज्योंही उठने को हुआ कि मेरी स्त्री ने तुरन्त चरण को पकड़ लिया और बड़ी मुश्किलसे उसके मुंह से निकला:—स्वामी !.........

पर मुझे इसकी क्या परवाह थी। ख्याल तो था घड़ीकी तरफ कि बारह बज गये। इससे उसकी तरफ कुछ भी ध्यान न देकर ज्योंही आगे बढ़ा कि मजदूरनी आगई और सारा मतलब समझ बोली:- "भया ! क्या करते हो, देखो बहू का क्या हाल है।"

मैं,-करता क्या हूं कुछ भी तो नहीं।

मज०। (गिड़गिड़ा कर) ऐसा न करो। सारा घर तबाह होगया है। बहूके ऊपर तो तरस खाओ उनकी रकमों में हाथ न लगाओ।

मैं,-(जरा तिवारया कर) रकम देखूं या अपनी बात ! रकम तो रुपया होने से कल फिर हो जावेगी,-एकसे एक चीजें बन जायंगी। मगर बात कहां से आवेगी ?

यह कह और ज्यादा ठहरने का मौका न देख झट् मैं घर से बाहर निकल आया और उनको गिरो मार जल्दी जल्दी गठरी बांध राजराजेश्वरी के मकान पर पहुंचा जैसा कि सत्ताइसवें परिच्छेद में लिखा जा चुका है।

तीसवां रंग।

मित्र श्यामलाल का बाग एक खासा उपवन था। जिसके चारोंतरफ रंग बिरंगी एक से एक बढ़कर महकदार तथा खूबसूरत देशी और विलायती वृक्ष लगे हुए थे। उन वृक्षों की हरियालियों के बीच एक छोटा पर बड़ाही मनोहर बारहदरी वाला बंगला बना हुआ था। एकतो बंगला स्वयं ही अपने ढंगका निराला और

उदाहरणीय था परन्तु फिर भी जगह जगह और मौके मौके से लगी हुई लताओं में ढंपकर आनन्दकानन हो रहा था ।

ताली तो मुझे मिली ही गई थी । इस के अतिरिक्त अपनी स्त्री के रकम गिरों मारने पर जरूरत से ज्यादा रुपये मिल गये थे । अतएव किसी बात का गम था ही नहीं । बेखटके मैं बाग में चला आया और एक खिदमतगार को एक किराये की गाड़ी लेकर राजराजेश्वरी के बुलवाने को भेजा । रुपये की आशिक रंडी भला क्यों न आती ? उसे तो अभी अभी ढाई हजार मिल चुके थे । मिलते हुए माल को इस कलयुगी समय में कोई नहीं छोड़ता फिर वह भला मुझ सा बेवकूफ और गांठ के पूरे असामी को क्यों छोड़ने लगी ? गाड़ी पहुंचते ही वह एक नौकर के साथ आ धमकी । अगवानीके लिये मैं बाग के फाटक तक गया और उसे अपने साथ ले कमरेमें आ धमका । जहां कि राजराजेश्वरीने कहा:-" मैंने सुना है कि अब आपने यहीं रहने का पक्का इरादा कर लिया है ।"

मैं,-(मुस्कराकर) हां कुछ कुछ तो ऐसीही इच्छा है । पर यह बात तुमसे कही किसने ?

राजा० । योहीं किसी से सुनने में आई थी । आपही विचारें जो आदमी मेरी इतनी खबरगीरी रखता है,--घड़ी घड़ीका समाचार जानना चाहता है फिर भला मैं उसका समाचार क्यों न जानू । आपकी रत्ती रत्ती बातें मुझें मालूम हो जाती हैं ।

मैं,-तो क्या मेरे पीछे जासूस छोड़े रहती हो क्या ?

राजा० । नहीं प्यारे ! क्या किसी भलेमानस के पीछे भी जासूस लगाये जाते हैं । पर यह बात मानने की है कि जिस प्रकार आपको मेरी फिक्र है मुझे उससे कहीं बढ़कर रहती है ।

"रहनाही चाहिये । क्योंकि ताली दोनो हाथोंसे बजती है ।"

हंसकर मैंने यह कहा और उसे आलिङ्गन कर लिया। पर यह बात समझनेकी है। पाठक जरा उसके बातोंको गौरसे पढ़ें और देखें किस प्रकार रंडियां छिपी हुई छुरी चलाती हैं और कैसे उस्तादी से बात-चीत करती हैं।

इसी प्रकार देरतक बार्तालाप होती रही। बाद को मैं अ-पने आमोद प्रमोदमें लगा। मेरी आज्ञानुसार राजराजेश्वरी अँड़ता-लीस घंटे में सिर्फ आठ सात घंटे के लिये घर जाती, नहीं तो मेरे साथही बागमें रहती। उसकी आज्ञानुसार नित नये नये रंग खिलते, रोज नये नये किस्मकी सैलबाजी होती,-प्रतिदिन नये लोग मेहमान बना बना कर बुलाये जाते और उनकी जाफतबाजी होनेके साथही रुपये कौड़ी की तरह उड़ते।

इसी प्रकार एक सप्ताह तक धूम मची रही, यद्यपि इस बीच में घरसे कई बार मजदुरनी तथा मुनीम साहब बुलाने आये पर मैं न गया और बहाना करके उनको टाल दिया। एक दिन मैं राजराजेश्वरी तथा अपने लम्पट साथियोंकी दावत कर नाच गाने से थकजाने के कारण उसे बंदकर बिस्तरेपर पड़ रहा। और थकावटके कारण नीन्दभी जल्द आ गई। यह नहीं कह सकता कि मैं कितनी देर तक सोया रहा कि एकाएक धमाका सुन पड़ा। साथही मुझे किसीने झटका दिया, आंख खुलतेही सामने बिजलीसी चमक गई। देखा कि एक कालादेव एक लम्बा चमचमाता छुरा लिये सामने खड़ा है।

नीन्द में सारी नसोंके ढीला हो जानेसे एकाएक हमले में सिपाहियों की भी हिम्मत छूट जाती है। यहां तो मैं न सि-पाही था और न कभी साहस का काम किया था। उसका छुरा और उसकी शक्ल देख मेरी आत्मा कूंच कर गई। साथही वह मेरी छाती पर चढ़ बैठा और गरजकर बोलाः-"अब कहां जाओगे।"

मेरे बगलमें पड़ी हुई राजराजेश्वरी भी उसकी आवाजसे चिहुं-

ककर जाग उठी और उसका चमचमाता छुरा और काली शकल देख चिल्लाकर दरवाजे की तरफ भागी। पर इसके साथही दरवाजेके लगे हुए परदेके भीतर से एक और कालीशक्ल ने उसका बाल पकड़ उसे वहीं गिरा दिया और कहा "खबरदार ! जान सलामत चाहती हो तो चुपचाप यहीं पड़ी रह।"

सती औरतों की अपेक्षा वाराङ्गानाओं को अपनी जिन्दगी से ज्यादा मुहब्बत होती है। कारण कि उनको गृहस्थों की अपेक्षा ज्यादा लालसायें सताये रहती हैं। निदान वह तो चुपचाप वहीं पड़ी रही। इधर मेरी छाती पर चढ़े हुए कालेबुखार ने कहाः—"बोलो ! अब खिड़की से न कूदोगे।"

मैं,—नहीं मुझे माफ करो, कसूर हो गया,—माफ करो।

वह,—बस,—तुम्हारे लिये माफी नहीं है। तुम हम लोंगो को तीन बार धोका दे चुके हो। सरदारने अबकी बार झुंझलाकर तुम्हें मार डालने का हुक्म दिया है।

यद्यपि मैं बहुत गिड़गिड़ाया, उसकी बहुत कुछ मिन्नत की पर उसको जराभी तरस न आया और उसने कहाः—"बस आज तुम्हारा आखिरी वक्त है। तुम्हे पांच मिण्ट के लिये और मुहलत दीजाती है।"

मैं,—(कांपती हुई जबानसे) तो क्या मेरे बचने का कोई उपाय नहीं है।"

वह,—हां ठीक,-एक तदवीर है।

मैं,--वह क्या।

वह,--दो हजार रुपये।

मैं,--रुपया तो अभी तैयार नहीं।

वह,--कोई माकूल जमानत।

मैं,--यहां है कौन जो जमानत करेगा।

मैं बड़ी फिक्र में पड़ गया। सोंचते सोंचते राजराजेश्वरी का

ख्याल आया। उसे मैंने कई बार पुकारा पर उसने कुछ भी जवाब न दिया। आखिरकार उस कालेदेवने कहाः--"बस अब तैयार हो जाओ।"

"लाचार हो मैं पड़ रहा। चुपचाप ईश्वरका स्मरण करने लगा। इसी समय अचानक मुझे अपनी स्त्री का ख्याल आया और मैंने अपने मनमें कहाः--"यदि वह होती तो जरूर ....

अभी इतना ही सोंचने पाया था कि उस कालेबुखार ने छातीपर हाथ रक्खा,-साथही मेरी आंखें भी डरसे बन्द हो गईं। उसने छुरेको हवामें ताना और चाहता था कि एक ही वार में मेरा काम तमाम करें कि एक धड़का हुआ। बदमाश चिल्ला कर दूर जा गिरा। आंखें खोलकर देखा एक तरफ भाई श्यामलाल हाथ में पिस्तौल लिये कई पुलिसवालों के साथ खड़े हैं। और दूसरी तरफ वह कालादेव जमीन पर पड़ा तड़प रहा है।

इकतीसवां रंग।

इसके बयान करने की यहां कोई जरूरत नहीं दिखलाई पड़ती है कि उन बदमाशों का क्या हुआ। क्योंकि मेरे किस्से और उनके मुकद्दमें से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हें जैसी करनी वैसी भरनी के अनुसार पोलिसकोर्ट से कालेपानी की सजा मिल गई और उसी दिन से चिरकाल के लिये वह बदमाशों का भयंकर दल लोप हो गया।

जब पुलिसवाले उन बदमाशों को पकड़ कर ले गये। तब मुझ में भी जरा साहस हुआ। परन्तु इतना होजाने पर भी अभी तक मेरे हवाश ठिकाने नहीं हुए थे। इससे मैंने राजराजेश्वरी की तरफ ध्यान न दिया (पीछे मालूम हुआ कि वह गाड़ी में चढ़ उसी वक्त अपने घर चलीगई, वरन् एक टक श्यामलाल की तरफ

देखता रहा। वह भी धीरे धीरे चलकर मेरी चारपाई के पास एक कुरसी खींचकर बैठ गये और गौरसे मेरी तरफ देखने लगे। —

उनकी नजर और मेरी नजर बराबर चार हो रही थी। परन्तु इस भयङ्कर घटना का अभी तक मेरे दिल पर इतना असर बना हुआ था कि उनके आनेके बाद भी मैं उनको धन्यवाद न दे सका। आखिरकार उन्हों ने कहा:—

"कैसी तबीयत है उठके बैठो तो सही।"

उनके इतना कहने से बदन में, खून दौड़ गया। मैं उठ बैठा और बोला: "आज आपही की बदौलत मेरी जान बची है। इसके लिये आपको अनेकानेक धन्यवाद है।"

श्याम०। धन्यवाद उस सर्वशक्तिमान परमात्मा का करो कि जिनकी बदौलत आज तुम्हारी जान बची है। मुझ में क्या किसी भी जीवधारी में इतनी सामर्थ्य नहीं जो किसी की कुछ सहायता कर सके। वह घट घट का व्यापी और अंतर्यामी है। नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी कि सीधे रेलसे उतर तुमसे मिलने के लिये यहां आता और घर न जाता। तुम भाग तो जाते नहीं थे। तुमसे सबेरे मिल लेते। पर नहीं, उसे तुम्हारी जान बचानी थी और इसी के लिये उसने मुझे यहां भेजा। सुनो (मेरा नाम लेकर) अबसे भी शिक्षा ग्रहण करो, समझो, परमात्मा ने तुम्हें इस समय क्यों बचाया है ? सिर्फ इसी लिये कि तुम बुरे का बुरा नतीजा देख चुके। अब अपनी अगली बातों के लिये पश्चाताप् करो और कर्तव्यक्षेत्र में कुछ भला कर उसका भी परिणाम देखो। भाई जी, मैं देख रहा हूं कि तुम्हें यह बात कुछ निरस सी मालूम हो रही है और शायद तुम इस पर यह सवाल करोगे कि मैं भी पहले इसी फंदे में फंसा हुआ था और मैंने ही, पहिले पहल तुम्हें यह घर दिखलाया। पर उसके लिये मुझे कितना दुःख है इसका हाल तो

मेरा दिल ही जानता होगा। इसके कहने की आवश्यकता नहीं। पर यह बात जानने की है कि "जब लाख टांकी खाते हैं तब महादेव बनते हैं।" तुम दूध पीते बच्चे नहीं थे। तुम्हें इस बात के लिये खुद सोंचना चाहिये था कि यह रास्ता भला है या बुरा। क्योंकि मनुष्यमात्र को काम प्रारम्भ करने के पहिले ही उसका परिणाम सोंच लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त मेरा तुम्हारा साथ सिर्फ एक बार हुआ, पर जबसे तुम इस बुरी सोहबत में पड़े तब से मैं पचीसों बार तुम्हें समझा चुका पर अफसोस, तुम जराभी नहीं सम्हलते हो। यदि तुम मेराही अनुकरण करते तो भी तुम अच्छे होते।

मैं,–प्रारब्ध में जो होता है वही तो होता है।

श्या०। छोटी २ बातों में प्रारब्ध नहीं लिया जाता बल्कि कर्तव्य लिया जाता है। यदि आपको राह चलते ठोंकर लग जावे तो क्या कोई कहेगा कि भाग्य में ठोंकर खाना लिखा था इससे ठोंकर लगी। नहीं, कभी नहीं। तमाम लोगों के कहनेके साथही तुम्हारा हृदय भी कहेगा कि यदि देखकर चलते तो ठोंकर क्यों लगती। भाई! इसी लिये लिखा है कि जितना काम करे उसका परिणाम सोंच ले और उसे उत्तम रीति ही से करे। आगे तो जो भाग्य में लिखा होगा वैसाही होगा।

चुपचाप सिर झुकाये मैं सच्चेमित्र श्यामलाल की बातें सुनता रहा। यद्यपि मैं उनकी बातों का खंडन न कर सका तद्यपि मुझे उस से तसकीन न हुआ। और न दिल में ही कुछ असर पैदा हुई। उनका कहना वैसाही हुआ जैसे "अरण्यरोदन?"

उन्होंने फिर कहाः–कुछ बोले नहीं!"

मैं,–क्या बोलूं।

श्या०। कुछ समझ में आया।

इसका मैंने कुछ जवाब न दिया। उधर उन्होंने दम दम पर सवाल करना प्रारम्भ किया। एक तो उनकी बातें दिल में बैठती

न भी दूसरे उनके अच्छे करते बुरा हुआ। मेरे दिल में यह ख्याल पैदा हुआ कि "जब देखो तब यह छेड़ा करते हैं अब न इनसे मिलैंगे और न यह कुछ कहैंगे।"

यह सोंचकर मैं पाखाने के बहाने वहांसे उठ चला गया और उधर वे भी अपने घर चले गये। दूसरे दिन उनका बाग़ छोड़ मैं घर आया पर राजराजेश्वरी की धुन अभी तक समाई ही हुई थी।

बत्तीसवां रंग।

यद्यपि उस दिन मैं निर्दयता के साथ अपनी स्त्रीके रोने पर भी कुछ ध्यान न दे उसकी रकम ले चला गया था। परन्तु उसके सेवा सुश्रुषा और भक्ति में मैंने आज आने पर जरा भी कमी न पायी। मुझे देखतेही वह अपने स्वभावानुसार मेरी तरफ मुंड़ी। मैं नहाया धोया, उसने ताजा भोजन तैयार किया और मैं खाकर सो गया।

सोने को तो मैं सो गया पर अनुभवशील पाठकों को यह मालूम होगा कि कभी कभी सो जाने पर भी आत्मा चैतन्य रहती है और दूसरे लोगों को बातचीत कानों में साफ साफ आती है। वैसेही आज भी हुआ। मुझे उस दिन की बातें पूरी तरह याद हैं, जैसा कि नीचे लिखा जाता है।

मेरे सो जाने पर मुनीम जी खाना खा जब घरसे लौटे तो यहां भी आये और आवाज दे उन्होंने पूछाः--"कहो बेटा! (मेरा नाम लेकर) वह बाग से आये कि नहीं।"

मेरी स्त्रीने जवाब दियाः--"हां बाबा आये तो हैं। पर सो रहे हैं।"

मुनीम। अच्छा सोते हैं तो सोने दो। लेकिन बेटा! अब दुकान तो चलती नहीं दिखलाई पड़ती है। ।

मे० स्त्री०। क्यों बाबा, क्या हुआ?

मुनीम। तुमको मालूम होगा कि तुम्हारे स्वसुर लगभग तीस हजार के माल छोड़ गये थे जिसे बेंच बेंचकर हम रुपया तुम्हें देते गये। अब दुकान में बहुत किस्म का माल घट गया है। दुकान में जब दस किस्मका सौदा होता है तभी एक के लगार से दूसरा बिकता है। खाली एक चीज के लिये ग्राहक आता भी नहीं। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास रुपया भी नहीं है। नहीं तो थोड़ा बहुत लगार के लिये सब मेल मंगवा लेते।

मेरी स्त्री ने रोते हुए जवाब दिया:-"नहीं बाबा, अब पास। में एक रुपया भी नहीं है। जो कुछ आप दे जाते थे वे उठा ले जाते थे।(आंसु पोंछते हुए) यदि आप कहीं सौदा न ला दें तो भूखों ही मर जाना पड़े।"

मुनीम ने कुछ उत्तर न दिया। वह सोंचसागर में डूब गये मेरी स्त्री ने कहा:-" तब बाबा फिर कैसे चलेगा। (हिंचकीलेकर) तो क्या आपके सामने ही मेरी मिट्टी खराब होगी!"

यह कह वह जार जार रोने लगी। स्वामिभक्त बूढ़े मुनीम ने उसे चुप कराते हुए कहा:—" नहीं बेटा! डरो नहीं। मेरे जीते जी तुम्हें किसी प्रकार की तकलीफ़ न होने पावेगी। मैंने तुम्हारे स्वसुर का नमक बहुत दिनोंतक खाया है। क्या उसका जोश मेरी इन बुढ़ौती की हड्डियों से निकल जावेगा। नहीं, कभी नहीं।"

इसके पश्चात् मेरी आत्मा ज्ञान शून्य होगई और मैं आगे कुछ भी न सुन सका कि क्या क्या हुआ। करीब तीन बजे के मेरी आंखें खुलीं। साथही राजराजेश्वरी का ध्यान दिमाग में चक्कर मारने लगा। झट् झट् जरूरी कामों से फ़ारिग हो मैं उसके मकान पर पहुंचा। देखा वह सामने मसनद लगाये बैठी है। पर वह नित्य के प्रतिकूल मुझ से कुछ रूठी हुई मालूम पड़ती थी। मेरे बैठने के साथही उसने कहा:—" कल तो आप मेरी जान ले ही चुके थे।"

मैंने कहाः—" क्या कहा, मैं !"

राज० । एक ही हुआ । यदि आपकी हिफाजत में गये और कुछ हुआ तो उसके जिम्मेदार आपही ठहरे ।

मैं,—नहीं नहीं प्यारी राजराजेश्वरी ऐसा न कहो । तुम और ऐसी बातें ! ! !

इस पर वह हंसने लगी । फिर उसने कहाः—" खैर होगई कि उस दिन जान बँच गई । "

मैं,—ईश्वर ने बड़ी दया की नहीं तो बदमाश कभी न छोड़ते ।

राज० । इसमें तो कोई शक नहीं था । अब तो मैं वहां न जाऊंगी ।

मैं,—वहां अब रहने की जरूरत नहीं है मैं भी वहां नहीं जाऊंगा । ताली भी मैंने फिरवा दी है ।

राज० । बहुत अच्छा किया । वे सब कौन थे ?

मैं,—वे सब वही बदमाश थे जो कि तुम्हारे कोठे पर भी आये थे ।

उनका नाम सुनते ही राजराजेश्वरी एकाएक कांप उठी, उसके रोयें खड़े होगये । उसने पूछाः—" पिस्तौल किसने चलाई थी ?"

मैं,—जिनका वह बाग है ।

आँखें फाड़ कर राजराजेश्वरी ने कहाः—खैर होगई कि वे आ गये । "

मैं,—अब उन बातों को छोड़ो । ऐसी बातों का जबान पर लाना भी अशुभ है ।

फिर दूसरे प्रेम से भरी बातों का फव्वारा छूटा । रंगबिरंगी चुटकियां दोनों तरफ से ली जाने और ठहाके की आवाज से छत टकराने लगी ।

तैंतीसवाँ रंग।

मेरे बाप कोई कारूं का खजाना तो छोड़ मरे थे नहीं। सो भी मुझ जैसे नालायकों के आगे भला कारू के खजाने की भी क्या हकीकत हो सकती है। मैं राजराजेश्वरी के यहाँ बराबर आया जाया करता था। परन्तु मुझमें अब पहिली बात न रही। रुपये का कहीं से ठिकाना न था कि बराबर उसकी फरमाइशों को पुरा किया करता,—जब कभी फरमाइश होती तभी रुपयों की फिक्र करनी पड़ती, उसके लिये तोड़ जोड़ लगाना पड़ता। इसमें अकसर एक दो दिन की देर हो ही जाती। जभी देर होती तभी तकाजा होने लगता और वह (राजराजेश्वरी) कहती कि आप अब हीला हवाली करने लगे। जान पड़ता है कि अब आपको मुझसे पहिली मुहब्बत नहीं रही। तथापि मैं बार बार कसम खा खा कहता कि नहीं, मुहब्बत में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई है। अमुक उलझन पड़ जाने से देर हो गई है। पर उसे किसी प्रकार से विश्वास न होता।

सच है, बालू की दीवार कितने दिनों तक ठहर सकती है। तिस पर चतुरा राजराजेश्वरी के जल दृष्टि के आगे? निदान मेरी तंगीसी का हाल मालूम करते हीं उसके रुपयों की मुहब्बत का इतिश्री हो गया। मुझे देखते ही अब उसके नाक भँव चढ़नेलगे, आँखें भी कुछ रुखियाने लगीं। वह अपनी शकल सूरत ऐसी बना लेती जैसे कोई रूठा हुआ आदमी। लाचार मैं क्या करता। बेबशी थी, कोई चारा नहीं था। उसे दौड़ दौड़,-बात बात पर हाथ जोड़ने लगा, दम दम पर कसम खा दिलासा दिलाने लगा। पर सब व्यर्थ था। उसे सच्ची मुहब्बत तो थी ही नहीं जो मेरी बिनती का कुछ असर होता। लाचार मैं भी झंख पटक चुप हो पड़ रहता और वह भी खिड़की पर जा बैठती।

पाठकों को मालूम ही होगा कि वह एक मशहूर तवायफ थी। फिर उसकी क्यों न खोज होती? रियासतों से तो अकसर हर एक कामों में बीड़ा आता और जब वह न मिलती तो फिर दूसरेको दिया जाता। जब से उसने खिड़की पर बैठना छोड़ दिया था तब से लोगों की आमदरफ्त बिलकुल कम होगई थी, लोग समझते थे कि या तो वह कहीं गई हुई है या जाना नहीं चाहती। बहुत लोग तो ऊपर जाने का भी साहस नहीं करते थे। कारण कि,-रंडियों का खिड़की पर न बैठना इस बात को सूचित करता है कि वहां (कोठे) पर कोई बैठा हुआ है। और इस समय वह दूसरे की आमद नहीं चाहती। इसके अतिरिक्त मेरी और उसकी मुहब्बत का चारों तरफ हल्ला हो गया था। सफरदाओं ने चारों तरफ कहदिया था कि वे नाच इत्यादि में नहीं जावेंगी। इस कारण खाली वापस आना समझ बहुत लोग न आते और एकाद् जो कभी कभी भूले भटके चू पड़ते वे वहां से मेरी हवा के कारण लौटा दिये जाते थे।

आज उसे पहिले पहल कोठे पर बैठा देख तमाशबीनों को आश्चर्य हुआ। पर पहिला दिन होने से उनमें इतनी हिम्मत न हुई कि वे ऊपर आते और मुजरा इत्यादि के लिये कहते। पर हां उसे गौर से खड़े हो होकर देखते फिर आपस में कुछ बात-चीत करते और चले जाते।

मैं चुपचाप बैठा हुआ यह सब लीला देखता और राजराजेश्वरी को समझाता जाता था। मर जब कुछ असर पड़ता न देख और थक कर ज्योंही कमरे में जा पड़ रहा त्योंही सीढ़ियों पर किसी आनेवाले के पैरों की आवाज आई। बिस्तरे पर पड़े पड़े मैं उस तरफ गौर से देखने लगा। देखा कि एक आदमी को एक सफरदा साथ लिये आया और पास जा बैठ कर बोला:-"बाई जी बीड़ा आया है।"

इतनी देर तक तो राजेराजेश्वरी उसे देखकर भी अनदेख बनी हुई थी परन्तु बीड़ा का नाम सुनतेही उठी और बोली:- "किसका बीड़ा और कहां का है।"

सफरदा ने कहा:-" यहीं (नाम बतला कर) का है। और सात दिन के लिये है ?"

राज०। (आश्चर्य से) हूँ, क्या है कि जो सात दिन तक नाच होगा।

सफ०। बाहर से एक रईस आये हुए हैं उन्हीं के यहाँ जशून होगा।

मतलब कि थोड़ी देरतक इसी प्रकार बार्तालाप हो जाने के बाद ४००) सौ रुपये सातो दिन के लिये ठहरे। बादको सट्टा लिख वह सफरदा मय उस आदमी के तो चला गया। पर इधर राजराजेश्वरी की जुदाई से मेरे दिलमें बेचैनी पैदा होने लगी। फिर भला ऐसी हालत में लेटा कैसे जाता ? निदान मैं सोंचता विचारता धीरे धीरे चलकर राजराजेश्वरी के पास के मसनद पर आ चुपचाप थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद बोला:—

"क्या आपने बीड़ा पक्का कर लिया ?"

पहिले थोड़ी देर तक तो वह चुपचाप बाहर की तरफ देखती रही। पर फिर न मालूम क्या समझकर मेरी तरफ मुड़ी और बोली:—"क्यों न पक्का करते। क्या बैठे बैठे काम चलेगा।"

उसका उत्तर पा और उसमें से निकली हुई हवा का रंग देख मैं थोड़ी देरतक चुपचाप रहा। पर बेचैन हो होकर चुटकी ले लेने वाले दिलकी बेताबी के कारण बोला:-" एक दो दिन का होता तो कोई ऐसा हर्ज नहीं था। पर यह तो सात दिन का है।"

राज०। चाहे एक दिन का हो चाहे सात दिन का, जब आपको मुझसे पहिली मुहब्बत नहीं रही तब इस सवाल से क्या फ़ायदा ?

मैं,—इसका क्या सबूत है कि मुझमें अब पहिली मुहब्बत नहीं रही!

राज० । समझ देखिये । कहने की कुछ जरूरत नहीं है! भारी खरचेवाले के लिये बड़ी आमदनी चाहती है।

उत्तर सुन मैं चुप हो गया। समझा, बस फरमाइस में देर हो जानाही इस गुस्से के पैदा होने की जड़ है। पर फिर मेरे सच्चे दिल ने कहा कि क्या राजराजेश्वरी मेरे साथ,-जो कि आजतक उसके साथ अपनी हस्ती बिगाड़ रहा था, ऐसा करेगी! नहीं, कभी नहीं। बोलाः—"जरा सी देर हो जानें के लिये इतनी खफगी! प्यारी राजराजेश्वरी ऐसा न करो, देखो मैं तुम से कितनी मुहब्बत करता हूं।"

राज०। मैं भी जितनी मुहब्बत करती, हूं तुमपर हरवक्त जैसा जान देनेको तैयार रहती हूं उसको सिवाय मेरे दिल और ईश्वर के भला दूसरा कौन जान सकता है? पर जो आप जरा सी के लिये कहते हैं तो सुनिये,—नाजनियों का दिल शीशेसे भी ज्यादा रूखा और कमजोर होता है। जिस प्रकार जरा सी ठेंस लगनेसे शीशा टुकड़े टुकड़े हो जाता है उसी तरह यह दिल भी जरा जरा सी बातों के लिये खंड खंड हो जाता है।

मतलब यह कि चतुरा राजराजेश्वरी ने मुझे बातों से नाथ लिया और मैंने आखिर में हार कर कहाः—

"मैं तुम्हें बातों में तो जीत नहीं सकता। और मारे डरके कुछ ज्यादा कह भी नहीं सकता। एक दो दिन का होता तो खैर कलेजे पर पत्थर रख बिता देता। मगर बापरे,—सात दिन के पहाड़ से दिनरात कैसे कटेंगे। मैं तुमसे किस मुंह से कहूं अगर तुम्हें मेरी कुछ भी मुहब्बत हो तो बीड़ा वापस करदो।"

राज०। आपके हुक्म की तामीली में मुझे कुछ उज्र नहीं

है। पर इस समय मुझे रुपयों की बड़ी आवश्यकता है। जबसे श्यामा चली गई तबसे खरचे का सारा बोझ मेरेही सिर आ पड़ा है।

रुपये का जिक्र सुन और उसके कहने का कुछ कुछ अर्थ समझ कर मैं दहल उठा क्योंकि मेरे हाथ में रुपये थे नहीं। दुकान की आमदनी बिलकुल बंद हो गई थी और वह बराये नाम कहे जाने योग्य हो गई थी,—पर अभी तक मारे सहम और दबदबे के कोई कुछ न कहता था और न कोई भीतरी बातों को जान सकने के कारण टाट उलट जाने का गौगा उड़ाता था। निदान थोड़ी देर तक चुप रह मैं बोलाः—

"रुपये तो बराबर दिये गये हैं। फिर उसके लिये इतनी घबरांहट क्यों? जब जरूरत होगी तभी दिये जावेंगे।"

राज०। ठीक है "घड़ी में घर जरे नव घड़ी भद्रा।" साहब, अगर जरूरत न होती तो मैं कभी बीड़ा न लेती। चार सौ रुपये मुझे एक आदमी को देने हैं। नहीं तो कोई जरूरत नहीं थी।"

मतलब समझकर मैं कांप उठा। अगर चार सौ रुपये हों तो काम चले पर यहां तो पास में दस भी नहीं थे। फिर करूं तो क्या करूँ। थोड़ी देर तक तो चुपचाप बैठा रहा। उसकी जुदाई के ख्याल से बेचैनी दम दम पर बढ़ने लगी। मैंने कहाः—"मेरी राय तो है कि बीड़ा वापस करदो।"

वह बड़ी देर तक चुप रही। उसकी चुप्पी देख मैं विचलित हो उठा। थोड़ी देर के बाद मैंने फिर पूंछाः—

"बोलो क्या कहती हो?"

राज०। मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकती। रुपयों की मुझे सख्त जरूरत है, बिना रुपये के काए किसी हालत में नहीं चल सकता।

मैं,—तो बिना चारसौ के तुम बीड़ा वापस नहीं कर सकती हो।

राज० ।-नहीं, कभी नहीं।

मैं,—तो रुपयों के आगे मुहब्बत की कोई हकीकत नहीं रही?

राज०। रुपये के आगे किसी भी चीज की कुछ हकीकत नहीं है।

इस पर मैं जरा कुछ रुखिया सा गया। साथही वह भी बोल उठीः—"अगर साहब आप बीड़ा फेरवाना चाहते हैं तो ४००) रुपया लाइये नहीं तो चुपचाप बैठे रहिये या घर जाइये।"

उसके (रंडी के) आगे मेरी इज्जत कैसे कम हो,--वह भला मेरी जूती चटकारने वाली मुझे एसी लगती बात कैसे कहे? इन बिचारों से जरा दिलमें कुछ गरमी आ गई और मैंने कहाः--"अच्छा वापस कर दो मैं अभी रुपये देता हूं।"

यह कहने के साथही मैं तपाक में उठ और घर के लिये चल पड़ा। रास्ते में रुपयों के लिये सोंचने लगा, पर कोई भी ऐसा द्वार न दिखाई पड़ा जिससे उसका बन्दोबस्त करता। मैं इसी सोंच में देरतक तड़प रहा था कि एकाएक अपनी स्त्री की बंची हुई चम्पाकली का ध्यान आ गया और उसी को मैंने चोरी से उड़ा दिया।

चौंतीसवां रंग।

हाय राम! मैं कहा हूं। हैं, यह कैसा अंधेरा घुप्!! अंधेरी कोठरी! और कोई नहीं!!!

यह कह कर मैं आश्चर्य से इधर उधर देखने लगा। पर दिखलाई क्या पड़ता, वहां तो कोई थाही नहीं। चारों तरफ सन्नाटा और निजर्नता, छा रही थी।

थोड़ी देरतक मैं इसी अकचकाहट में पड़ा रहा। पर इसके

बाद धीरे धीरे मेरे हवाश ठिकाने होनेके साथही थोड़ी देर पहिले की बातें एक एक करके सामने आने लगीं।

आह, सोंचता हूं तो छाती फटजाती है,–कलेजा खंड खंड हो जाता है। चम्पाकली चुरा कर मैंने बहुत ही बुरा किया। यद्यपि मैंने सारी सम्पत्ति फूंक डाली थी परन्तु मेरी स्त्री को जरा भी न अखरा था। परन्तु उस चम्पाकली ने तो उसकी जानही लेली। हे विधाता! तू मुझ जैसे कुकर्मियों को सुमति दे, उनको बुद्धि दे कि वे कुलटाओं के फेर में न पड़ें और अपने घर को चौपट न करें।

मेरी स्त्री उस चम्पाकली को अपनी जान से बढ़कर रखती थी बल्कि यों कहिये कि वह अपने साथ, दिल से उसकी दिन रात पूजा किया करती थी,–दिन रात वह उसे अपनी छाती से लगाये रहती। सोते जागते, उठते बैठते वह एक समय भी उसे न बिसारती थी। परन्तु मैंने क्या किया यह कहते नहीं बनता है,–कंठके बाहर नहीं होता है। पर पाठक,–आप तो सुनने के लिये उत्सुक हैं। खैर सुनिये, मैंभी सुनाने के लिये तैयार हूं।

किस्सा यों है कि राजराजेश्वरी को न जाने देनेके लिये मैंने बहुत कुछ किया जैसा कि अगले परिच्छेद में लिखा जा चुका है। पर जब वह रुपये ही के लिये अड़ी तो मुझे उसी की ही फिक्रपड़ी। घर की सारी चीजें तो धीरे २ खतम हो गई थीं। ऐसी कोई चीज नहीं बची थी जिसे बेंच मैं अपना काम पूरा करता यानी राजराजेश्वरी को नाच में जाने से रोक देता। लाचार मैंने चम्पाकली पर दांत लगाया। पर वह मिले कैसे? स्त्री अपनी खुशी से उसे कभी दे नहीं सकती थी। मसल मशहूर है कि जान से प्यारी चीज जान रहते कोई नहीं देता। तिसपर मेरी ऐसी हालत थी! भला उस तरह होता तो यह आशा भी की जा सकती थी कि वह समझाने बुझाने पर दे देगी। पर इधर मैं भी चांडाल था। अपना मंशाओं को पूरा

करने के लिये कुछ उठा नहीं रखता था। और कोई उपाय न देख मैंने चौक से उम्दा भांग की माजूम खरीदी, और नित्य से सबेरे ही घर पहुंचा। मेरी पतिव्रता स्त्री नित्यानुसार आज भी मेरी सेवा में लगी। रोज तो मैं फूटे मुंह से न बोलता था पर उस दिन हँस हंस कर बोलने लगा। मुझे प्रसन्न जान अर्द्धाङ्गिनी भी मेरी खुशी से खुश होने लगी। भोजन इत्यादि कर मैं नित्य के प्रतिकूल चुपचाप अपने सोने की कोठरी में जा झूठ ही सोने लगा। उधर मेरी स्त्री भी भोजन इत्यादि से फारिग हो मेरे पास आई। उसे पास आया देख मैं उठ बैठा और उंघाये हुए आदमियों की तरह बोलाः–" अ ह ह बड़ी भूल हो गई।"

मेरी स्त्री ने पूछाः–" क्या भूल हो गई।"

मैं,—गुरू महाराज के यहां से प्रसाद आया था। मैंने तो अपना हिस्सा खाया मगर तुम्हारा उसी जेब में है, लेकर खालो।"

ऐसी पतिव्रता स्त्री भला कैसे मेरी बात टाल सकती है। उसने कोट की जेब से उस माजूम को निकाल कर थोड़ा खा लिया और बाकी को वह ज्योंही रखने चली है त्योंही मैंने कहाः–"सब खा डालो प्रसाद जूठा कर रखना बड़ा भारी पाप है।"

"पाप हो चाहे पून्य। मुझे तो आपकी आज्ञा मानना है" यह धीरे से कह मेरी सती उसे उड़ा गई। पर ऐसी सुशीला ने जिस ने कभी भांग का मुंह तक न देखा हो वह भला दो आने के माजूम की गरमी कैसे बरदाश्त कर सकती है। उसकी नशा से थोड़ी ही देर में वह बेहोश हो बगल की एक चारपाई पर लेटी और सो गई।

उसे बेसुध देख मैं धीरे धीरे अपनी चारपाई से उठा और डरते डरते उसके पास पहुंचकर जाना कि चम्पाकली उसके गले में उसकी अंगिया के नीचे छिपी है। झट मैंने उसके बटन खोलने के लिये हाथ उठाया, साथही जमीन कांपी, आस्मान में एक तेज

आवाज हुई। इससे मैं थोड़ा पीछे हट गया। थोड़ी देर ठहर दिल की धड़कन को साहस से दबा पुनः उसके पास पहुंचा और एक एक कर उसके कुरते के तमाम बटनों को खोल उसके गले से चम्पाकली को निकाल लिया।

संसार में डर बड़ी बुरी बला है। तिसपर चोरों को तो वह हरदम अधजीवा बनाये रहती है। यद्यपि मैंने किसी का माल नहीं लिया था, किसी की गठरी नहीं मारी थी, चुराया था तो सिर्फ अपने घर का माल और अपनी चीज। पर मुझे उस घर में नींद न आई। यद्यपि मैं अपने बिस्तरे पर पड़ रहा पर चैन एक पल के लिये भी पास न आई और न दिलकी धड़कन ही रुकी। मैंने बारहा इधर उधर करवट बदला, पर जब किसी प्रकार से भयने पीछा न छोड़ा तो उठ खड़ा हुआ और मजदूरनी से किवाड़ बंद करा अपने मित्र के यहां जा पड़ रहा।

सवेरा हुआ संसार के सारे लोग अपने अपने कारबार में लगे। परन्तु मेरे लिये तो दूसरी ही खेती थी, मेरे लिये दुनियां के नियम ही और थे। जिस मित्र के यहां मैं सोया हुआ था उन्हीं के यहां आवश्यकीय क्रियाओं से छुट्टी पा मैं उसे (चम्पाकली) बेंचने निकला। कई दुकानों पर इधर उधर दिखाया। किसी को पसंद नहीं आयी, किसी को पसंद भी आयी तो उसने चाहा कि हम मुफ्त मोल ले लें। मतलब यह कि बहुत जगह इधर उधर टकराने पर एक गाहक मिल गया और उसने उसे साढ़ेचार सौ पर खरीद लिया।

इस बेचा बिक्री में दिन के बारह बज गये। मैं घबड़ाया तो था ही झट रुपया ले राजराजेश्वरी के मकान पर पहुंचा। वहां वह एक सफरदा से बैठी कुछ बातें कर रही थी। रुपये की गठरी देख मनमें वह हंसी पर ऊपर से मुझे सुनाने के लिये सफरदा को

लक्ष्य कर कहने लगी–"देखो, इन्हों ने भी दिल्लगी को सच मान लिया। (फिर मुझे सम्बोधन करके) छिः छिः इसकी क्या जरूरत थी। कल तो मैं आपके मुहब्बत की जांच करती थी।"

पाठक जानते होंगे कि रुपये की गरमी बड़ी बुरी होती है। उसके पास में होने से तपाक भी खूब बढ़ा चढ़ा होता है। इससे मैंने भी मुस्कुराहट के साथ जरा गरमा कर कहाः–"खैर दिल्लगी ही सही। तुमने तो समझा था कि इनके पास कुछ है ही नहीं और न इनका किया कुछ हो सकता है।"

राज०। (बड़े नखरे के साथ) छिः छिः मैंने कब ऐसा कहा था। छिः भला मैं और आपको ऐसा समझ सकती हूं। वह तो एक तरंग थी। सो भी इस लिये कि देखें आप क्या कहते हैं। आपकी खातिर बीड़ा तो मैंने आपके जाने के बादही फिरता कर दिया। (सफरदा की तरफ इशारा करके) यह भी उस वक्त थे। इनसे पूछ लीजिये।

मैं,—मुझे पूछने की कोई जरूरत नहीं है।

सफरदा,—नहीं भैया जी, आपके जाने के बाद ही बीड़ा लौटा दिया गया।

मैंने राजराजेश्वरी के आगे रुपये की गठरी पटककर कहाः– "अच्छा इनमें चार सौ रुपये हैं इनको गिन लेना।

यह कह मैं तेजी से पीछे की तरफ फिरा। मुझे लौटते देख राजराजेश्वरी तेजी से दौड़कर आई और उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। उधर और रंग देख सफरदा भी उठ खड़ा हुआ और सलाम कर चला गया। फिर मुझमें इतनी ताब कहां जो मैं उस पिशाचिनी की बात फेर या हाथ छुड़ा चला जाता। निदान मैं उसके साथ पुनः उसके कमरे में लौट गया जहां इधर उधर की बातों की बंधी हुई गठरी खोल दी गई और मैं उसमें बांध दिया गया।

इसी बातचीत के सिलसिले में कुछ खाना पीना भी हुआ। फिर ताशबाजी शुरू हुई। बादको दोनों के दोनों सो गये। धर्मघड़ी के पांच बजने की घनघनाहट के साथ मेरी नींद्र खुली। मैंने राजराजेश्वरी को जगाया, वह उठी। देर से सो जाने की उसने शिकायत की, फिर फरागत हो नहाना धोना हो ही रहा था कि खिद्मतगार आया और बोला,–" गाड़ीवान आ पहुँचा है और पूछता है कि कै बजे गाड़ी लानी होगी।"

अभी वह उसको कुछ कहने भी न पाई थी कि बीचही में मैं बोल उठाः–"गाड़ी क्या होगी और कहां जाना होगा।"

यह कह मैं गौर से उसके मुँह की तरफ देखने लगा। पहिले उसके मुंह का रंग बदला,–फिर बड़ी चालाकी से उसे छिपा "कह दो तैयार रक्खे जब जरूरत होगी मंगा ली जायगी। यह कहते हुए मुझसे बोली कि, आज जरा दुर्गाजी सैर को चलने की इच्छा है। यों तो मैं न जाती पर अब आप आये ही हैं इससे तबीयत चाहती है। कहिये आपकी क्या राय है?"

मेरी क्या राय होती? मेरी भीतरी हालत जैसी थी उसे तो परमेश्वरही जानता रहा होगा। मेरा दिल हार्दिक दुःख की आग से दिन रात जला जाता था,–शरीर की हड्डियां भी उसकी धधक से टूट रही थीं! जब जब चम्पाकली का ख्याल आता था तब तब उस जलती हुई आग में मिट्टी का तेल पड़ जाता था। आंच से, टूटने वाली हड्डियों की तड़तड़ाहट से जो मनोबेदना हो रही थी उसका हाल किसी दूसरे को नहीं मालूम होसकता। पर सामने मोहिनी मूरत में जो 'जहर का प्याला' रक्खा हुआ था उसमें मैं इतना रीझा हुआ था कि मुझे उस समय उस मनोबेदना का जरा भी ख्याल न था। मैंने कहाः—" जैसी तुम्हारी राय हो।"

नौकर चला गया। दोनों नहा धोकर बैठके के कमरे में

आये । यहां उसने अपना सिंगार पटार किया, नया कपड़ा जैसा कि रंडियां नाच में पहिनकर जाती हैं पहिना, यद्यपि उसकी तैयारी देख देखकर मेरे हृदय में चंचलता पैदा होने लगी थी परन्तु ऐसा विश्वास नहीं होता था कि राजराजेश्वरी देखते देखते आंखों में धूल डाल चली जावेगी । जब वह पूरी तरह तैयार हो चुकी तो मैंने कहाः—“ आज तो बड़ी बड़ी तैयारियां हो रही हैं ? ”

मेरे गालों को चूम कर उसने कहाः—“ तुमको ठगने को।”

पाठक ही इस “ठगने” शब्द के अर्थ समझें। मेरी समझ में तो औरही आता था जैसा कि उस समय होना आवश्यकीय था। इतना कह उसने अलमारी से एक शामपीन की एक बोतल निकाली । फिर क्या था ? दोनों तरफ से उसके दौर चलने लगे ।

थोड़ी देर तक तो वह पिलाती और बराये नाम खुद पीती रही । जब मुझे जरा सरूर चढ़ आया तो उसने नौकर को बुलाकर कहाः—“ अरे देखो, देर न होने पावे । ओफ ! अभी तक सफरदा लोग भी नहीं आये । ”

मैं,—सफरदाओं की भला क्या जरूरत है । क्या तुम रंग में भंग करोगी क्या ?

राज० । वाह, आपने भी खूब फरमाया । सरूर में गाने बजाने से ज्यादा आनन्द मिलेगा या यों चुपचाप बैठे रहने से ।

मैं वाजिबी जवाब पा चुप हो रहा । ठीक ही उसने कहाथा, रैनी में बिना गाना-बजाना के भला सोने में सुहागा का आनन्द कैसे मिल सकता है । इसके थोड़ी देर बाद सफरदा लोग आये । सबों ने सारंगियोंको टें टाकर सुर मिलाना और इधर बाई जी भी नाहीं नाहीं करते रहने पर भी जबर्दस्ती मुझे ढाल ढाल कर पिलाना प्रारम्भ किया ।

जब मैं नशे में बिलकुल आपे से बाहर हो गया तो राजरा-

श्वरी ने सफरदाओं से कहाः-"अरे सात बज गये तुम सब लोगों ने अभी चलने की तैय्यारी नहीं की।"

मैं,-क्या गाड़ी आ गई है?

राज०। हां गाड़ी खड़ी है।

यह सुन मैं उठा पैर लड़खड़ाया पर राजराजेश्वरी ने थाम कर बैठा दिया। मेरे देखतेही देखते नाच में जाने का सारा सामान गाड़ी पर लादा गया। एक एक करके जब सब सफरदा चले गये तो राजराजेश्वरी ने कहा—"नमालूम मेरा पेट क्यों गुड़गुड़ा रहा है।"

मैं,-(गिलास उसके मुंह को लगाकर) तो थोड़ी और पीलो, पेट में सरदी होने से ही ऐसा होता है।

मेरा कहना मान और गिलास मेरे हाथ से ले उसने अपने मुंह में लगाया फिर उसे जमीन पर रख बोलीः—

"पेट में मीठा मीठा दर्द हो रहा है। (प्यार से) जरा लेटो, मैं पैखाने हो आऊं।"

अपने हवाश में रहने पर भी तो मैं उसके हाथों का खिलौना हो जाता था फिर भला इस समय की कौन कहे? उसका कहना मान मैं चारपाई पर पड़ा फिर मुझे सुध बुध न रही।

पैंतीसवां रंग।

बड़ी देरतक उसी चारपाई पर, अंधेरी कोठरी में पड़ा मैं चौतीसवें रंग की बातें सोंचता रहा। फिर उठने और प्रकाश की गरज से सलाई के लिये इधर उधर चारों तरफ हाथ पैर बढ़ा टटोला। संयोग से एक सलाई हाथ लगी उसे रगड़ ऊंजाले में जो कुछ देखा उससे मैं चिहुंक उठा। पहिले तो यह समझीही में न आया कि मैं कहां हूं। पर फिर थोड़ी देर बाद कोठरी के बाहर

आने पर मालूम हुआ कि जिस कोठरी में मैं पड़ा हुआ हूं वह राज-राजेश्वरी के मकान के सबसे नीचे वाले मंजिल की एक कोठरी है। ठीक होश हुआ, पता चला, कहा नहीं जाता ! राम ! राम ! हरे ! हरे ! जिस कोठरी में कि मैं पड़ा हुआ था उसी में वहां का एक चिलमभरवा रहता था। नीचे आने के बारे में सोंचते सोंचते मुझे अपने ऊपर हंसी आई, साथही गलानि ने भी आ दबोचा। मन में विचार उत्पन्न हुआ कि जिस राजराजेश्वरी के लिये मैंने अपनी स्त्री का पूजित चम्पाक़ली बेंच डाला,-जिसके लिये मैंने अपने को मिटा दिया, आज उसीने मुझे ठगने के साथही भारी धोखा दिया,—यहां तक कि मुझे चिलमभरवा के कमरे में डाल दिया। हाय ! हाय !! जिसको मैं प्राण से बढ़कर समझता था उसी ने मेरा कुत्ते से भी कम आदर किया। अपना प्यारा कुत्ता तो साथ लेती गई और मुझे यहां डाल गई। मतलब कि मैं बहुत झनका पटका पर होता क्या ? फिर सोंचा घर चलूं लेकिन वहां मुँह क्या दिखलाऊँगा, स्त्री को क्या उत्तर दूंगा। सो अब घर जाना उचित नहीं। यह ठान मैंने इधर उधर नजर डाली। देखा एक रसरी छत से लटक रही है। ग्लानि तो थी ही, मन में आया कि अब इसी में फांसी लगा मर जाना बहुत ही उचित होगा।"

यह सोंच मैंने उसमें फंदा लगा गले में डाल लटक गया। पर बीच से डोर टूट गई। क्यों न टूटती ? मुझे तो अभी अपने किये का झेलना बाकी था। फिर मौत कैसे आती ? दिल में तो आई कि फिर से लगा जान दे देवें पर इसके साथही यह ख्याल हुआ कि यों मरना भी ठीक नहीं।

यो सोंच झंखता पटकता, कभी माथा पीटता, कभी अपने किये पर पछताता,—कभी हाथ से मुँह छिपाता और कभी

गुस्से से हाथ मलता घर पहुँचा। कमरे के भीतर पैर रखते ही मेरी स्त्री दौड़कर आई और मेरे पैरों से लिपट कर कहने लगी:–"स्वामि, नाथ! आपने यह क्या किया?"

पहिले तो मैं चुप रहा। फिर अकचका और अजनबी बन कर पूछा:–"किया क्या?"

मेरे इतना पूछने पर वह और फूट फूट कर रोने लगी। आप लोग जानते होंगे कि मुझ जैसे आदमी स्त्रियों के ऊपर बहादुरी दिखाने में जरा भी नहीं शर्माते। इससे मैंने पूछा:–"बोलो किया क्या?"

हिंचकी भरते हुए उसने कहा:–"चम्पाकली! चम्पाकली!! वह मेरे जीव से भी मुझे ज्यादा प्यारी है। वह आपके माता की निशानी है। उसके बिना मैं जी नहीं सकती।"

मैं,–'हैं तब क्या हुआ?

स्त्री०। आपही उसे लेगये हैं। मजदूरनी भी यही कहती थी। बस आप अब उसे ला दीजीये।'

मैं,– मेरे पास कहां है कि मैं ला दूं। अरे पगली, मैं ने तो उसे देखा भी नहीं।

स्त्री०। देखा नहीं लेकिन कुरता खोल ले गये जरूर। स्वामि, उसे ला दीजिये। मैं आप के पैरों की कसम खा कहती हूं कि मैं उसके बिना जी नहीं सकती।

मैंने अपने दिल में कहा कि इस प्रकार इससे पीछा छूटना मुश्किल है। कुछ तो मिजाज गुस्से की आग के कारण पहिलेही से भड़क रहा था और रह रह कर दिल जोश मारता था कि अभी चल और पता लगा ऐन मजालिस में उसका नाक काट कुरूपा बनादें। इधर मेरी स्त्री बेतरह मेरे पैर से चिमटी जारही थी।

मैंनेकहा,–"मैं चम्पाकली की बात कुछ भी नहीं जानता। बस हट जाओ।"

उसने कहा--,--"नाथ, आप जरूर जानते हैं। आपके सिवा कोई छाती से उसे निकाल ले जा नहीं सकता। इसके अतिरिक्त और उस दिन मकान में था ही कौन?

मैं,-बस हट जाओ। मेरे पैरों को छोड़ दो।

भला वह कबकी रुकने वाली थी? वह बराबर पैरों से चिमटी उसके लिये आग्रह करती गई। निदान मुझे गुस्सा चढ़ आया,--राजराजेश्वरी के ऊपर के गुस्से का बादल इधर ही बरसने को उमड़ आया। बरदाश्त करने की ताब न ला मैंने पैर इतनी तेजी से झटकारा कि वह अंटाचित छटक गई। फिर मैंने लात चलाई, वह दुभार्ग्यबश उसकी पेट से जा लगी। खर आग एक साथ रहने से आग लगे बिना नहीं रहती। इसी कारण मेरा वह लात उसके लिये यमदूत हुआ और उसकी चोट से एक आह खींच वह सदा के लिये चल बसी। *

छत्तीसवां रंग।

इसके आगे की रोलाने वाली घटनाके बयान करने की मुझ में ताकत नहीं है। इस से मैं उस हृदय-विदारक विवरण को छोड़ आगे बढ़ जाता हूं। आशा है कि दयावान पाठकगण मुझे करेंगे।

किसी प्रकार गिरता पड़ता, अपने को कोसता, भाग्य को भला बुरा कहता हुआ मैं उस पुण्यात्मा, आर्दश सती के शरीर को दग्ध कर घर आया। वहां जिस जिस चीज पर मैंने नजर डाली वही निगलने के लिये मुँह खोले दिखलाई पड़ने लगी। घर की एक एक कोठरियों, एक एक कोने,-नीचे ऊपर सब जगह गया पर कहीं भी कोई चीज ऐसी न दिखलाई पड़ी जिससे मेरी आंखों को सुख मिले और जहां मैं बैठ सकूं।

थोड़ी देर तक इसी प्रकार इधर उधर फिरता रहा, कहीं चैन

न पा लाचार अपनी स्त्री के कमरे में गया। हां वह कमरा मुझे कुछ सुखदायक प्रतीत हुआ। साथही उसकी चीजों को देख मेरा दिल उमड़ आया! मैं खूब दिल खोलकर रोने लगा। कह नहीं सकता कि मैं कितनी देर तक रोता रहा। यहां तक कि मैं सो गया और निम्न लिखित स्वप्न देखने लगा।

सोये में मुझे एकाएक मालूम हुआ कि दो भयंकर मूर्तियां सामने आ पड़ीं। जिनकी बड़ी बड़ी डरावनी आंखें थीं, लम्बे और काले काले हाथ पैर थे। चेहरा तो ऐसा भयानक और विकराल था कि बड़े बड़े जवामर्दों की भी, उनके तरफ देखने से उनकी नाड़ी बंद होजानी सम्भव थी। डील डौल उनका देव सरीखे था। मतलब कि दोनों यमदूत थे।

दोनों आते ही दोनों तरफ से मेरी दोनों भुजाओं को पकड़ घसीटते हुए मुझे एक तरफ को ले चले। उनकी शकल देख मैं डरकर बैठने तथा गिड़गिड़ाने और उनके हाथ पैर पड़ने लगा। पर भला वे कब के सुनने वाले थे। दया के बदले वे मुझपर गदा प्रहार करने लगे। जहां कहीं मैं रुकता वहीं वे मुझे ठोकने लगते। उनकी मार से मैं चिल्ला कर चारोंतरफ सहायता के लिये देखता, पर भला मेरी कौन सुनता?

मतलब यह कि वे मुझे घसीटते मारते और पीटते हुए एक ऐसे स्थान में ले गये जहां उन जैसे यमदूतों का एक खासा दरबार लगा हुआ था और उनके बीच में एक ऊंचे सिंहासन के ऊपर एक आदमी हाथ में कुछ कागजों को लिये देख रहा था। मेरे आने की आहट पा उसने मेरी तरफ निगाह डाली। उसने मुझे खूब गौर के साथ सिर से पैर तक देखा और उन दोनो यमदूतों को डपट कर बोला:--
"बस इसे अभी नर्क कुंड में ले जा और टुकड़े टुकड़े कर डाल दो।"

आज्ञा पा दोनों पूर्ववत मुझे घसीटते हुए एक ऐसे मकान के दर-

वाजे पर ले गये जिसमें चारों तरफ आगही आग धधक रही थी और उसमें के जलनेवालों की चिल्लाहट के मारे कान का परदा फटा जाता था। उनकी चिल्लाहटों को सुन मैंने अपने कानो को बंद करने के लिये अंगुलियों को उठाया ही था कि एक ने एक गदा जमाकर कहाः-" तुम्हारी भी ऐसही दुर्गती होगी।"

गदा की चोट से मैं चिल्लाया, पर चिल्लाने से होता क्या? वहां सुनने ही वाला था कौन! लाचार बड़ी देरकत मैं वहां की लीला देखता रहा? इसके पश्चात् एक निशाचर मुंहवाला यमदूत एक भारी आरा लेकर सामने आया। आतेही उसने मुझे पटक दिया। मैं डर से थर थराने लगा। पर वह भला कब का रुकने वाला था। उसने उस आरे को मेरे सिर पर चलाना प्रारम्भ किया। उसकी वेदना से मैं बेतरह चिल्लाकर आस्मान फाड़ने लगा। मेरी चिल्लाहट सुन एक तरफ,-मेरे पिता की आत्मा दुःखित और रोती हुई सूरत में सामने दिखलाई पड़ी। पास आतेही उसने गरज कर कहाः—

" जरूर इस पापी को चीर कर इसी रौ रौ नर्क में डाल दो (रोकर) हाय! इसकी बदौलत मुझे नर्क में दुःख भोगना पड़ता है। हाय!!! ...."

वह अभी इतना ही बोलने पाई थी कि एक तरफ से मेरी स्त्री की आत्मा दुहाई देती हुई सामने आई और मेरे पिता का हाथ जोड़ कहने लगीः-" पितः! यह क्या कहते हो। यह मेरा स्वामि है,-मेरा प्राणनाथ है (यमदूतों से) यह क्या करते हो, यह क्या करते हो। मेरे सामने तुम ऐसा नहीं कर सकते। यह को मुझे पहिले चीर डालो फिर उस तरफ हाथ लगाओ।"

यह कह वह उन यमदूतों के हजार हजार ढकेलते रहने पर भी मेरे पास लेट गई कि इतने में एक अन्य यमदूत हाथ में कई कागजों

को लिये दौड़ा हुआ आया और तेजी से बोला:–

"इसको अभी छोड़ दो। अभी इसके ऊपर महाजनों का बहुत कर्जा है। वहां से पहिले निपट लेने दो (कागजों को दिखा-कर) देखो उनके यह वारंट हैं।"

इसके बाद मेरी आंखें खुल गईं। न कहीं कुछ, न कहीं कुछ। डर से मेरा शरीर गन गन कांप रहा था। मुझ में इस समय इतनी भी ताकत न थी कि मैं गरदन फेर कर इधर उधर देखता या हाथ पैर हिलाता।

सैंतीसवाँ रंग।

सबेरा हुआ। दिवाकर ने उदय होकर रात भर के दुःखके हरने के साथही बहुत से विषयी लोगों को दुःखके सागर में डाल दिया। दुःखिया तो इस ख्याल से कि अब सबेरा हुआ अपने दुःखों को दूर करनेकी फिक्र कर कुछ सुखी होंगें। परन्तु विलासियों की दशा इस समय उनके बिलकुल विपरीत है। वे दौड़ २ कर तमनाशक भगवान को हाथ उठा उठा कर कोस रहे हैं। परन्तु भगवान सूर्यनारायण को इनके दुःखों से क्या मतलब? यदि ख्याल था तो उन्न बिचारे निस्सहाय दीनों का जिनको उनके सिवाय और कोई सुखी कर सकता ही नहीं था।

मतलब यह कि सबेरा हुआ। सब लोग उठ उठ कर अपने अपने कामों में लग गये। मुझे उठने में देरी देख मजदूरनी पुकारती हुई पास आई परन्तु मुझे तो बुखार बड़ी तेजी से चढ़ा हुआ था। सारा शरीर उसकी आग से जल रहा था। हाथ पैर हिलाने की मुझमें ताब न थी। उसके कई बार पुकारने पर मैंने आंखें खोलीं। पहिले तो अकचकाकर इधर उधर देखा। फिर कहा:—"तबीयत अच्छी नहीं है।"

उसने कहाः—"ढंगसे मालूम होता है कि बुखार चढ़ा हुआ है।"

मैं,–हां, इस समय बुखार बड़े जोरों पर है ।

मज० । बड़ी मुश्किल हुई । आज दूधका दिन है !

फिर वह चुप हो रही । मैं भी चुपचाप आंखें बंद किये पड़ रहा । फिर मुझे कुछ होश हवाश न रही । इसके बाद जब आंखें खुलीं और मुझे होश हुआ तो मजदूरनी की ज़बानी मालूम हुआ कि आज चौथे दिन मैंने आंख खोली है । हकीम की रायसे उस दिन मैंने पथ्य भी लिया । गरज कि, इसी प्रकार तीन या चार दिन और बीते और मुझमें इतनी ताकत आ गई कि मैं चलने फिरने लगा। धीरे धीरे करके शुद्ध हुआ, महापात्र इत्यादि की विदाई दे घर पर एक दिन दोपहर के समय बैठा हुआ था कि दुकान का बूढ़ा मुनीम रोता हुआ दौड़ा आया और कहने लगाः—"दुकान कुड़क हो गई, अमीन ने आप को बुलाया है ।"

यह विषम समाचार सुनतेही मैं सन्नसा हो गया।क्या करता? कोई उपाय न था। न मालूम किस महाजन ने कुड़क कराया इसका भी कुछ पता नहीं था । कर्जा तो कितनों का बाकी था । जो महाजन कभी भी दावा नहीं करने वाले होते हैं वे भी ऐसी हालत सुन नालिस ठोंक देते हैं । इन तमाम विचारों के आते ही मेरे रोयें खड़े हो गये। थोड़ीदेर के लिये आंखों के आगे अंधेरा छा गया,–सारे पाप कर्म का परिणाम आंखों के सामने नाचने लगा। लाचार, मुनीम को आगे चलने के लिये कह मैं धीरे धीरे उठा,–और ज्योंही सड़क पर आया त्योंही एक दूसरे नालिशदारने चपरासियों द्वारा मुझे गिरफ्तार करा लिया । अभी मैं इस विपत से बचने का उपाय सोंचही रहा था कि, अमीन दलबल दुकान से चलकर मकान पर आये और किवाड़ा खुला पा घरकी सारी चीजोंको भी

कुड़क कर, थोड़ी देर तक माकूल आदमी का इंतजार किया। पर भला मेरी कौन जमानत करता। मुझे जानते तो बहुत लोग थे परन्तु मेरी किसी के साथ राव रस्म थी ही नहीं। इसके अतिरिक्त जो कुछ जमा जायदाद थी सब कुर्क हो गई फिर भला दूसरे आदमी किस बुनियाद पर जमानत करेंगे। दो एक आदमियों की कुछ कहने सुनने पर हिम्मत भी बढ़ी तो अमीन साहब की इस बात से कि,–"समझलो इनको और कहीं ठिकाना नहीं है। खायेंगे तो वही जमा। फिर आखीर में तुम्हें पास से देना पड़ेगा।" इससे वे कान पर हाथ रखते हुए चले गये। लाचार हो मैंने अपने लम्पट साथियों को बुलवाया पर भला वे कब ऐसे वक्त में आने वाले थे?

एक तो इधर का यह हाल था। दूसरे उधर महाजन के इशारों तथा गर्मियों ने अमीन साहब को बेतरह कर दिया था। इससे उन्हें भी जाने की जल्दी पड़ी हुई थी। वे जल्दी२ मेरे हजार हजार कहने पर भी सरकारी ताला चढ़ा चले गये। इसमें भीड़ इतनी जमा हो गई थी कि उसका कुछ ठिकाना नहीं था। शर्मके मारे मेरा बुरा हाल हो रहा था। जो देखता वही थूकता। जिसके जी में जो आता वह वही कहने लग जाता। जबान किसी की कभी न रोकी गई है और न किसी ने रोका है। यही सोंच मैं भी छाती पर चुपचाप पत्थर दिये हुए खड़ा था।

एक ने कहाः–" देखो न? लौंड़ा इतना चौपटहा निकला कि बाप दादेकी इज्जत इसने गवां दी। और आज उसकी यह हालत हो रही है। "

दूसरा बोलाः–" रंडीबाजी के यही नतीजे हैं। "

तीसरा,–रंडियां ऐसी होती ही हैं। वे जीते को दरगोर कर देती हैं। देखो न विचारे ने कितने दिन ऐय्याशी की कि इतनेही में तबाह हो गया।

चौथा,-बचाजी को आजही तो मालूम होता होगा । आजही तो दिखलाई पड़ता होगा कि दुनिया कैसी है ।

पाचवां,-(मेरे बापका नाम लेकर) बड़ा नालायक निकला। इसने सचमुच में "दीया से काजल प्रगट" वाली कहावत को सच्चा कर दिखाया ।

मतलब कि लोग खूब मनमानी बक रहे थे । धीरे धीरे कर भीड़ कम हो गई । बड़ी देर तक मैं अपने छुटकारे के विषय में सोंचता रहा । कोई उपाय न दिखलाई पड़ा । सारी चीजें अमीन साहब ताले के भीतर कर गये थे । यहां तक कि बाहर इतना सामान भी न था कि मैं रात को भोजन बना सकता ।

कहने सुनने से गिरफ्तार करने वाले चपरासियों ने थोड़ी देर तक इंतजार किया । बाद को वे मुझे लेचलने के लिये तैयार हुए । क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता,-जिनको मैं दिन रात डाटें बतलाता था,-जो सम्मन तामील कराई दो दो आने पैसेके लिये गिड़गिड़ाते थे,-उन चपरासियोंको आड़ में लिवा जाकर मैं उनके पैर पड़ा। उनकी बहुत बहुत मिन्नत की और कहा कि मैं अकेला हूं, मुकद्दमें कई एक हैं, इससे मुझे गिरफ्तार न करो, छोड़ दो, महाजन का आदमी भी तो साथ नहीं है ।

बारे ईश्वरने मेरी सुनली। एक के दिल में समा गई और वह दूसरे का मुंह ताकने लगा ।

उसका मतलब समझ उसने कहाः-" नहीं, नहीं अमीन साहब देखते गये हैं । ऐसा नहीं हो सकता ।"

पहिला,-देखकर तुम्हारा कोई क्या कर लेगा ।

दूसरा,--नहीं नहीं । अमीन साहब देख गये हैं । रिपोर्ट कर देंगे तो नौकरी जाती रहेगी ।

पहिला,-रिपोर्ट क्या करेंगे। जो आदमी खुद ऐबी है,-जिसमें

दागी है वह भला दूसरे को क्या दागी कहेगा या दूसरे में क्या ऐब निकालेगा। उसको तो हरवक्त ही दागों के छिपाने के लाले पड़े रहते हैं।

दूसरा,—उनके आगे तुम्हारी कौन सुनेगा।

पहिला,—फुशके लिये मशाल और सलाई दोनों बराबर है।

दूसरा,—खैर, तुम्हारी जैसी मरजी।

मतलब कि किसी प्रकार उन चपरासियों से बात तय पा गई। पर अफसोस,—जितने के लिये वे अड़ गये उतनी रकम पास में न थी। दूसरे, मुझे देता कौन? उधर वह बराबर अपनी बात पर तने रहे। लाचार और कहीं का सहारा न देख राजराजेश्वरी का स्मरण हुआ। साथही बहुत तरह के ख्याल आये। कभी दिल में उठता कि वह कभी न देगी क्योंकि तमा उनको बहुत होती है। साथही दूसरे ख्यालों ने कहा कि क्या इतनी छोटी बात के लिये, खास कर ऐसे मौके पर जब कि मेरा एक पैर जेलखाने के भीतर पड़ा हुआ है वह मेरी मदद न करेगी? जरूर करेगी। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि जिसके साथ मैंने अपने को बरबाद कर दिया,—जिसको मैंने अपनी सारी सम्पति उठाकर देदी क्या वह दस रुपयेके लिये मुंह मोड़ेगी,—नहीं, कभी नहीं। पर नहीं दुनियां, दुरंगी है इसका किसी को भी विश्वास न करना चाहिये। यद्यपि सतयुग और त्रेतायुग में भी लोग अपने मतलब के लिये,—अपने स्वार्थ के लिये दूसरे से प्रीति करते थे क्योंकि यदि ऐसा न होता तो गुसांई तुलसीदासजी "सुर नर मुनि सब कर यह रीति। स्वारथ लाइ करहिं सब प्रीति॥" कदापि न लिखते। परन्तु कलियुग में तो स्वार्थियों ने अंधाधुंधी मचादी है जहां जरा स्वार्थ में कमी हुई तहां झटकार बताया। इसपर 'मुर्दा दोजख में या बिहिश्त में" वाली कहावत भी चरितार्थ होती है। मतलब यह कि, मैं सिपाहियों को साथ लिये राजराजेश्वरी के मकान पर

पहुंचा और उनको डेवढ़ी पर खड़ा करा भीतर गया। देखा,—बाई जी मसनद लगाये बैठी हैं और उनका पीकदान सम्हालने वाला मुसवा, जिसके लिये श्यामा और उसमें बहुत लड़ाई हो चुकी थी, जैसा कि पाठकगण आगे पढ़ चुके हैं, उसके सिर में धीरे धीरे तेल दबाता और हंस हंसकर बातें करता जा रहा है। पाठक! लगी हुई आग बड़ी बुरी होती है। उसकी जलन के आगे आदमी आंखों के रहते भी अंधा हो जाता है,—नम्र से नम्र मनुष्य भी उसकी लपट से आग का अंगारा बन जाता है। यद्यपि मुसवा को सिर दबाते देख मेरे दिल में वह नीच आग मिट्टी के तेल की भांति भभक उठी,—सारा शरीर धांय धांय जलने लगा, हड्डियां तड़खने लगीं,—लोहू की जलन और क्रोध रूपी सांप की फुंफकार से गला सूखकर कांटा हो गया,— पर मैं चुपचाप निस्तब्ध वहीं सामने खड़ा हो गया। इसी प्रकार खड़े खड़े मुझे लगभग दस मिनट के बीत गये। पर मजाल क्या कि राजराजेश्वरी के मुंह से, सलाम की कौन कहे, खैरोआफियत पूछने की कौन कहे,—मिजाजपुर्शी करने की कौन कहे,—कोई आवाज तक निकली हो। इधर मारे शर्म के मेरे मुँह से भी कोई आवाज न निकलती थी? निकले भी तो कैसे? मियवांचकद्दर! मेरी उस समय की दशा को आप ही सोच देखें,—मेरी अगली दशा और अब की हालत को बिचारें! मेरी समझ में तो आप लोगों में कोई भी ऐसा न होगा जिसे मेरी दशा पर तरस न आई हो। हाय! एक वह जमाना था जब कि यही 'जहर का प्याला' रूपी राजराजेश्वरी बेदाम का गुलाम बने और कमर कसे दिनरात खड़ी रहती थी और आज एक यह जमाना है कि मैं उसके सामने सिर्फ दस रुपये के लिये कमर कसे, हाथ बांधे खड़ा था और वह मुंह से न बोलती थी! यह कुछ नहीं, सिर्फ मेरी करनी का फल था, मेरी ऐय्याशी का नतीजा था, मेरे

कुकर्मों का परिणाम था। सावधान! पाठकों सावधान!!!

न मालूम मुझे इस प्रकार अभी कितनी देर और खड़ा होना बाकी था कि नीचे से चपरासियों के पुकारने की आवाज सु "विष रस भरा कनक घट जैसे" की कहावत को सच्ची करने वाली मुर्ति हिली और उसके मुंह से यह आवाज़ निकलती सुन पड़ीः–"जा नीचे देख तो कौन पुकारता है।"

राजराजेश्वरी की हर बातों को पूरा करने वाला मुसवा आज्ञा पा तेजी से नीचे गया। पर मैं चुपचाप वहीं खड़ा और बराबर उस 'कालीनागिन' के मुँह की तरफ देखता रहा। पर उसने आंख उठाकर मेरी तरफ पूरी तरह से देखा भी नहीं। इतने में वह नीचे से लौटकर आया और कहने लगाः—

"भयाजी, दीवानी के चार चपरासी हैं और रुपये के इंतजार में खड़े हैं।"

विस्मय से उसने पूछाः–"कैसा रुपया?"

मुसवा भकुआकर मेरा मुँह देखने लगा। यदि मैं बोलने की चेष्टा करता तो कदापि भी मेरा कंठ न खुलता और न मेरे मुँह से आवाज निकलती। पर वह मौका और ही था, अचानक मेरे मुंह से निकल गयाः–

"उनको मैं लिवा लाया हूं। उन्हें दस रुपये दे दो।"

नाक सिकोड़ कर उसने कहाः–"रुपया कैसा? क्या तुम्हारे बाप यहां जमाकर गये हैं क्या? (फिर मुसवा को सुनाकर) बाप रे बाप! आज तक जो न हुआ सो इसने किया। भला मुझे तुम्हीं बताओ कि जो इन चपरासियों को देखेगा वह क्या कहेगा?"

यह सुन मुसवा कुछ बोलने ही वाला था कि मैं बोल उठाः–"प्यारी राजराजेश्वरी, मेरी तरफ देखो और उन्हें दस रुपये दे विदा किरो।"

राज० । तुम्हारी तरफ देखने से तो मुझे रुपये मिल जांयगे नहीं ?

इतने में चपरासियों ने नीचे से ललकार कर कहा:–“ वाहजी वाह ! अच्छे आये मानो इनके नौकर ही तो हैं । ऐसे रुपये की ऐसी तैसी, आओ नीचे आओ । ”

उनकी बात सुन और उनके साथ जाने के परिणाम को सोंच मैं कांप उठा और गिड़गिड़ाकर राजराजेश्वरी से कहने लगा:—“ ये बड़े दुष्ट होते हैं । मेहरबानी कर दे दो, नहीं तो फिर देने पर भी वे नहीं लेंगे । ”

इतने में एक ने जोर से पुकारा:–“ आते हो कि नहीं ? ”

यह सुन राजराजश्वेरी खुद उनको उत्तर देने से लिये चली । उसके तीवर और ढंग से उसका मतलब समझ मैं जरा उसके आगे बढ़ गया । पर वह इसकी कुछ भी परवाह न कर खुद आगे बढ़ गयी और बोली:–“ नहीं जाता है । ”

यह सुनते ही नीचे तो चपरासी किड़बिड़ २ करने लगे, ऊपर वह मुझ पर लाल पीली होने लगी । उसको बहुत बिगड़ा देख मैं अधीर सा हो गया । गिड़गिड़ा और हाथ जोड़कर बोला:– “ अगर न दोगी तो मुझे जेलखाने चला जाना पड़ेगा । ”

राज० । तो इसमें बेजा क्या होगा ! जैसा किया है वैसा पाओगे । एक तुम जेलखाने जाओगे और दस औरों को नसीहत मिलैगी और वे देखेंगे कि रंडीबाजी, ऐयाशी और फजूलखरची का आखिरी नतीजा यही होता है । अच्छा अब जाओ यहां से कुछ उम्मीद न रक्खो ।

मैं,–(गिड़गिड़ाते हुए) राजराजेश्वरी ऐसा न कहो । मुझे तुम्हारा बड़ा भरोसा था । क्या तुम मेरे ऐसे वक्त में भी काम न आओगी ।

राज०। क्या तुम्हें "पैसा पास में रंडी साथ में" वाली कहावत याद नहीं ...., ...

इतने में नीचे से चपरासी बिगड़ने और चिल्लाने लगे।

उसने कहाः—"बस जाओ, अब यहाँ से चले जाओ।"

चपरासियों की बिगड़ और राजराजेश्वरी की रुखाई, बेमुरव्वती और बदतीवर को देख मैं बदहवाश होने लगा था कि धम धम करता हुआ एक चपरासी ऊपर आही तो पहुंचा। आने के साथ ही उसने मेरा बाज़ू पकड़ और झटका देकर कहाः—'"चलो, चलो, नीचे चलो, तुम्हारी देख ली गई। झूठही हमलोगों को भी कुवां झकाते फिरते हो। खैर जो हुआ सो हुआ।"

यह कह और मेरा हाथ पकड़ वह मुझे नीचे ले चलने के लिये खींचने लगा। इस समय मेरे दिल की घबराहट सीमा पार कर गई, मैं अधीर सा हो और बदहवाशों की तरह सामने खड़ी राजराजेश्वरी के पैरों पर गिर पड़ा और बालकों की तरह रो रो कहने लगाः—"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, प्यारी राजराजेश्वरी मुझे बचाओ। दस रुपये कोई चीज नहीं है। न मालूम मैंने तुम्हें कितने दस दिये होंगे।"

मेरी हालत उस समय ऐसी थी कि यदि मैं किसी और अजनबी आदमी के आगे भी इस रीति पर हाथ पसारता तो वह मुझपर जरूर दया दिखाता। परन्तु विधाता नमालूम वेश्याओंका दिल किस चीज का बनाते हैं कि उसमें रहमका नाम तक भी नहीं देखा जाता। उसने मुझपर करुणा दिखाने के बदले क्रोध दिखाया और कहाः—"यह कोई पगला मालूम होता है। उठ उठ यहां से जा।"

यह कह वह अपने कमरे की तरफ बढ़ी पर मैंने उसका पैर पकड़ लिया। सिपाही बाहर बैठके के दरवाजे पर खड़ा यह लीला देख रहा था। मुझे पैर पकड़ने पर राजराजेश्वरी लाल होगई और

उसने मुसवासे कहा कि " इसकी गरदन पकड़ सिपाही के हवाले कर मकान से बाहर कर केवाड़ा दे आ। "

मुसवा भैला कबका चूकनेवाला था। उसने वैसाही किया। एक हाथ पकड़ उसने "मुझे जमीन से उठाया और दूसरा हाथ गरदन पर रख धक्का दे सिपाहियों के पास ले गया। वे इंतजार में तो खड़े ही थे। दोनों ने दो तरफ से मेरे हाथ पकड़ लिये, मुसवा गरदन थाम ढकेलने लगा और उधर राजराजेश्वरी हंसने लगी। यों मेरी ऐय्याशी के नाटक का आखिरी सीन गिर गया।

अंढ़तीसवां रंग।

लोग कहते हैं 'जेल है जेल है' पर नहीं, वहां भी रुपये का खेल है खेल है। समझदार पाठक मेरे इतना ही कहने से मतलब समझ गये होंगे और अब इस विषय में ज्यादा लिखने की जरूरत नहीं। वारंट कटानेवाले महाजन ने खुराक जमा करदी थी। थोड़े दिनों कचेहरी के सड़क की गर्द उड़ा मैं भी जेलखाने की एक कोठरी में पड़ गया। वहां की तकलीफों और आरामों को मैं यहां नहीं बयान करूंगा। कारण कि उनका यादि यहां सविस्तार बयान किया जाय तो एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। सरकार खाने को देती है खालिस गेहूं की रोटी पर मिलता है आधी मिट्टी मिली रोटी! सर्कार देती है उमदा उमदा साग। पर खाने को क्या आता है बरधों भैंसों के खाने का उसना हुआ कांटा! मतलब की सारी बातों में अनोखापन रहता है। इस छोटे से उपन्यास में किसका किसका बयान किया जाय!!!

" आराम " शब्द का नाम ऊपर आ चुका है। जेलखाना और आराम!!! इससे पाठकों को बड़ा आश्चर्य हुआ होगा। पर आश्चर्य करनें का कोई कारण नहीं है क्योंकि मैं ऊपर ही लिख

आया हूं कि "जेल नहीं रुपये का खेल है" रुपयेवाले के लिये, यदि वह उसका उपयोग करे तो उसे कहीं किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो सकता बल्कि बाजार से भी सस्ती चीजें उसे वहां मिल सकती हैं,—और घर से भी ज्यादा आराम वह वहां पा सकता है।

पर मेरे पास तो कुछ था नहीं फिर मुझे आराम मिले तो कैसे? लाचार अपने करम को झंख झंख और पठख पठख कर मैं कैदियों चपरासियों प्रभृति की यंत्रणा सहने लगा। वहां की कठोरता के कारण एकही हफ्ते के भीतर मेरा रंग बदल गया। पर करता क्या? जो कुछ पड़ता था वह सब चुपचाप रो रो कर सहता था।

संसार में सबके सुख दुःख के दो एक साथी होते हैं। परन्तु मुझे कौन था। आज तक मैंने किसी के दुःख सुख में योग ही न दिया था। फिर मेरी कौन खबर लेता? मेरे जो लम्पट साथी थे वे तो रुपया के खतम होतेही ऐसे गायब हुए मानो गदहे के सिर से सींग। बाकी बचे थे श्यामलाल। पर मैंने उनका कहना माना ही न था। यदि उनका कहना माना होता तो आज दिन यह बारी आती ही क्यों? पर अब इन प्रलापों से क्या फायदा? जैसा मैंने किया वैसा फल पाया!!!

कईबार मन में आई कि उनको अपना दुःखड़ा लिख भेजैं। पर शर्मने मुझे ऐसा करने न दिया। सुख के पले आदमी को जरासा भी दुःख पहाड़ हो जाता है। किसी प्रकार मैंने पहला हफ्ता बिताया दूसरा शुरू होतेही मुझे इस शिद्दत का बुखार आने लगा कि चालीस चालीस घंटे तक मैं लगातार बेहोश पड़ा रहने लगा। पर वहां पूंछने वाला कौन था? ईश्वर की कृपा से रविवार पड़ा। बड़े साहब आये। उन्हों ने मेरी नाजुक हालत देख अस्पताल में भिजवा दिया। पर वहां भी उसी चकमक माई की लीला देखने में आई। न कोई देखनेवाला, न कोई पूछनेवाला। किसी

प्रकार कलट् कलट् तीन दिन बिताये। चौथे दिन का सबेरा मानो मेरे लिये लकीडे हुआ। ज्योंही मेरी आंख खुली त्योंही देखा कि मित्र श्यामलाल नाड़ी पकड़े हुए वहां के डाक्टर से बातें कर रहे हैं। कमजोरी तो मुझे बहुतही ज्यादा थी उस दिन इससे ज्यादा मैं न देख और न जान सका। पर उसी दिन से हमारी काया पलट हो गई। दिन में तीन तीन चार चार बार डाक्टर साहब की सवारी आने लगी,—अच्छी अच्छी दवाओं के साथ अच्छी अच्छी चीजें भी मिलने लगीं, अच्छे पथ्य और सेवा सुश्रुआ से मैं सम्हलने लगा। इस प्रकार अभी एक सप्ताह भी न बीता होगा कि फिर श्यामलाल का दर्शन हुआ। आने के साथही उन्होंने मेरा नाम ले पुकारा और कहाः—"चलो उठो।"

मैं,—कहां ?

श्याम०—हमारे साथ घर।

मैं,—कैसे ? मैं तो जेलखाने में हूं।

श्याम०। तुम्हें शायद न्यायवान ब्रटिशगवर्मेन्ट के 'इंसालवेंट' वाले कायदे की आगाही नहीं है ? "इसालवेंट" की दरखास्त दे और सरकार में यह साबित कर कि तुम वास्तव में देने लायक नहीं हो मैंने तुम्हें जज साहब के यहां से छुड़ाने की आज्ञा प्राप्त कर ली है।

अभी वह इतना ही कहने पाये थे कि जेलर साहब अपने मातहतों के साथ आये और उन्होंने मुझे छोड़े जाने की आज्ञा सुनादी

उपसंहार।

जेल से छुड़ाने के पश्चात् श्यामलाल मुझे अपने साथ इलाहाबाद ले गये। वहां लगभग मैं दो महीने के रहा। परन्तु एक दिन एकाएक मेरा जी वहां से उचटा, दिल में यह बात आई कि दूसरे का आश्रित हो रहना ठीक नहीं। इसके अतिरिक्त संसार से भी चित्त विरक्त हो उठा था। सो मैं उनको एक पत्र लिख चुपचाप वहां से चल यहां आया और भांग खाने के साथ ही भगवत भजन गुनगान कर दिन बिताने लगा।

प्रिय पाठकगण! अब मुझे क्षमा प्रदान कीजिये, मुझे अब यह स्थान भी कष्टदायक मालूम होता है। इससे अब मैं इसे भी छोड़ सदा के लिये आप लोगों से बिदा होता हूँ। आशा है कि आपलोग मेरे इस छोटे से चरित्र से शिक्षा प्राप्त कर लाभ उठावेंगे और मेरी दशा पर तरस खा कभी कभी मेरे लिये जगतपति सर्वशक्तिमान परमात्मा से भी प्रार्थना कर दिया करेंगे। *

* इति *

आगे उपन्यास बहार मासिक पत्र में "राजदुलारी" नामक एक अत्यंत शिक्षाप्रद और रोचक उपन्यास छपेगा।

और

उपन्यास ग्रंथमाला में प्रसिद्ध उपन्यास लेखक बाबू गोपालराम लिखित "भोजपूर की ठगी" नामक उपन्यास निकलेगा।

* इस उपन्यास में अपनी कहानी सुनानेवाले के विरुद्ध पुस्तक बड़ी होने और खासकर विलम्ब होने के भय से बहुतसी बातें छोड़ दी गई हैं। आशा है कि वे दूसरे संस्करण में प्रकाशित कर दी जावेंगी। इसके लिये पाठक और चरित्र नायक महाशय से प्रार्थना है वे क्षमा करेंगे। लेखक।

उपन्यास-ग्रंथमाला।

यद्यपि काशी से हिन्दी भाषा में उपन्यासों की कई एक मासिक-पुस्तकें निकलती हैं परन्तु प्रेमी पाठकों को उनसे बड़ी बड़ी शिकायतें रहती हैं। कारण कि उनमें प्रायः प्रत्येक अंक में अधूरे उपन्यास निकलते हैं और दो तीन अंकों में कहीं जाकर पूरे होते हैं, इससे प्रेमी पाठकों को पहिले तो नायकों के नाम इत्यादि भूल जाते हैं (२) किस्से का सिलसिला ख्याल से उतर जाता है (३) यदि याद भी रहा तो कहीं यदि बयान किसी उलझन की जगह में टूट गया तो उनको आगे के लिये जितनी बेचैनी होती होगी, उसे उनका ही दिल जानता होगा (४) यदि कहीं यह सोचकर कि आगे का अंक आवेगा तो फिर से पढ़ लेंगे उन्होंने उसे उठा रख दियां और दूसरे अंक के आते आते वह खो गया तो चलिये फिर सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया।

पाठकों के इन्हीं तमाम कठिनाइयों को दूर करने और हिन्दीसाहित्य के एक खाली अंग को पूरा करने के विचार से "उपन्यास ग्रंथमाला" नामकी एक ग्रन्थावली आगामी माससे निकाली जावेगी। तारीफ तो इसमें यह है कि ग्राहक होनेवालों को एक पैसा भी पेशगी न देना होगा। सिर्फ उन्हें एक कार्ड पर ग्राहक होने की सूचना दे देनी चाहिये। जिस समय पुस्तक पूरी छपकर तैयार हो जावेगी उसी समय उनकी सेवा में बिला डाक खर्च लिये वह वी. पी. द्वारा भेज दी जावेगी। इससे न तो पाठकों को अपने रुपये का ही खटका रहेगा और न उपन्यास के उलझन में पड़ उन्हें बेचैन होना होगा।

इस ग्रंथमाला में हिन्दी के बड़े बड़े उपन्यास लिक्खाड़ जैसे बाबू देवकीनन्दन खत्री, बा० जयरामदास प्रभृति लेखकों की कलम से निकले हुए लोमहर्षण घटनाओं से रंजित तथा बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू इत्यादि भाषा के चुने हुए उपन्यासों से अनुवाद निकलेंगे। इसके लिये सब प्रकार का खास प्रबंध किया गया है। इससे प्रार्थना है कि ग्राहक होने की सूचना दे एक नई चीज के प्रचार में धड़ाधड़ सहायता दीजिये और घर बैठे बिना डाक महसूल खर्चे नित नये नये उपन्यासों का आनन्द लूटिये

यह 'जहर का प्याला' जिसे आप हाथ में लिये देख रहे हैं इसी ग्रंथमाला का पहला अंक है। इसके पढ़ने ही से इसमें प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का ज्ञान आप को हो गया होगा। आशा है अब आप भी सहर्ष ग्राहक बनने की सूचना दे बाधित करेंगे।

चिट्ठी पत्री निम्न लिखित पते से आनी चाहियेः—

मैनेजर उपन्यास ग्रंथमाला,-उपन्यास बहार आफिस, काशी—बनारस।